www.thearyasamaj.org

||ओ३म्||

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो अरावणः॥

आर्य संकल्प

(बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष-36 दिसम्बर अंक-12

स्वामी श्रद्धानन्द

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा

कार्यालय : श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 (बिहार)

www.thearyasamaj.org

आर्य संकल्प

सम्पादक
रमेन्द्र कुमार गुप्ता
मो. 9334184136

सह सम्पादक
संजय सत्यार्थी
मो. 9006166168
प्रेम कुमार आर्य
मो. 9570913817

सम्पादक मंडल
पं० व्यासनन्दन शास्त्री
श्री बिन्देश्वरी शर्मा
मो. 8544088138

संरक्षक
गंगा प्रसाद
सभा प्रधान

कोषाध्यक्ष
सत्यदेव गुप्ता
स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन
नयाटोला, पटना-800 004
दूरभाष : 07488199737
E-mail_arya.sankalp3@gmail.com
सदस्यता शुल्क
एक प्रति : 15/-
वार्षिक : 120/-

मुद्रक :
जय उमा प्रिन्टर्स
मो. 9430246879

संपादकीय

महर्षि दयानन्द का अमर ग्रंथ

हमारा देश भारत सदियों तक विश्व गुरु रहा। जब विश्व भर में एक ही धर्म-वैदिक धर्म, एक ही धर्म ग्रंथ-वेद, एक ही उपास्य देव-ओ३म्, एक ही जातीय श्रेष्ठ नाम आर्य, एक ही अभिवादन-नमस्ते। एक ही विश्वभाषा-संस्कृत और एक ही सांस्कृतिक ध्वज-ओ३म् की प्रतिष्ठा थी, तब तक सारे विश्व में वैदिक संस्कृति का ही साम्राज्य था। एक ओर जहाँ त्रेता युग में मर्यादा पुरूषोत्तम् राम ने वेदों की प्रतिष्ठा स्वीकर की वहीं द्वापर युग में योगेश्वर कृष्ण ने अपनी शक्ति भर इस महान राष्ट्र के पतन को रोका, खण्ड-खण्ड भारत को महाभारत बनाने का अथक प्रयास किया, गीता का संदेश दे कर्म योग का पाठ पढ़ाया और वैदिक संस्कृति के प्राण तत्व वर्णाश्रम धर्म की रक्षा की।

परन्तु समय का चक्र धूमा महाभारत के युद्ध में इतने धन-जन, विद्वानों शूरवीरों, कर्म वीरों, दानवीर आदि का बलिदान देना पड़ा जिससे श्री कृष्ण के पुरूषार्थ भी राष्ट्र को संभाल नहीं सका। पतन का जो दौर प्रारम्भ हुआ उसे बीच-बीच में बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य जैसी दिव्य विभूतियों ने संभालने का प्रयास किया परन्तु वैदिक विचार धारा से दूर होने के कारण सफलता नहीं मिली। परिणामत: अज्ञानता, परतंत्रता, दरिद्रता, अधार्मिकता ने हमारे राष्ट्र जीवन को जकड़ लिया। यह विश्व गुरू भारत शत सहस्त्र मत मतान्तरों और विदेशी सभ्यता का क्रीतदास बन गया।

ऐसी घटाघोप अन्धियारी में विश्वात्मा प्रभु की असीम अनुकम्पा से गुजरात में टंकारा नामक स्थान में कर्षण जी के घर फाल्गुन कृष्णा दसमी सम्वत् 1881 (ई० 1824) को एक बालक ने मूलशंकर के रूप में जन्म लिया, जो स्वामी दयानन्द बन, 1860 से 63 ई० तक गुरू विरजानन्द जी के पास विद्याध्ययन कर गुरू से जो गुर अर्थात् ज्ञान पाया, उस ज्ञान से संसार को आलोकित कर दिया। फिर से अतीत को वर्तमान करने और वैदिक युग को लाने के लिये अपने जीवन और जवानी को न्योछावर कर दिया। हजारो शास्त्रार्थ कर क्रांति का शंखनाद किया। पूरे विश्व में पुन: वैदिक संस्कृति हिलोरे लेने लगी। मुरादाबाद के राजा जय किशन दास के निवेदन पर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 1874 ई० में कालजयी ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" की रचना कर वैचारिक क्रांति का सूत्रपात कर दिया। यह अनुपम ग्रंथ जिसे ऋषि के स्वाध्याय के तीन हजार ग्रंथों का सार कहा जा सकता है, जिसमें 377 ग्रंथों का प्रमाण दे कर 1542 वेद मंत्रों या श्लोकों का उद्धरण दिया गया है। साढ़े तीन माह में लिखे गये इस ग्रंथ में केवल और केवल सत्य को ही प्रकाशित किया गया है इस कारण यह मौलिक विचारों का ग्रंथ बन गया, जो समाज को एक सिरे से दूसरे सिरे तक को दिला दिया।

सत्यार्थ प्रकाश चुने हुए क्रांतिकारी विचारों का खजाना है। समाज की रचना

www.thearyasamaj.org

आर्य संकल्प

-: सूची :-

क्रम	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	सम्पादकीय	
2.	वेद मंत्र	1
3.	स्वामी श्रद्धानन्द	2
4.	श्रद्धामूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द	9
5.	महर्षि दयानन्द	12
6.	दान	19
7.	धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण	21
8.	सत्य न्याय एवं वेद	26
9.	समाचार	30

इस पत्रिका में दिये गये लेख लेखकों के अपने विचार हैं, इससे सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

दिसम्बर

चार वर्ण

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या शूद्रो अजायत ॥

(यजु॰ 31 । 11)

शब्दार्थ- (अस्य) इस सृष्टि का, समाज का (ब्राह्मणः मुखम् आसीत्) ब्राह्मण मुख के समान है, होता है (बाहू राजन्यःकृतः) क्षत्रिय लोग शरीर में विद्यमान भुजाओं के तुल्य हैं (यत् वैश्यः) जो वैश्य है (तत्) वह (अस्य ऊरू) इस समाज का मध्यस्थान, उदर है (पद्भ्याम्) पैरों के लिए (शूद्रःअजायत्) शूद्र को प्रकट किया गया है।

भावार्थ- इस मन्त्र में अलंकार के द्वारा चारों वर्णों का स्पष्ट निर्देश है। मुख की भाँति त्यागी, तपस्वी, ज्ञानी मनुष्य ब्राह्मण पद का अधिकारी होता है। भुजाओं की भांति रक्षा में तत्पर, लड़ने-मरने के लिए सदा तैयार अपने प्राणों को हथेली पर रखनेवाले क्षत्रिय होते हैं।

उदर की भाँति ऐश्वर्य और धन-धान्य को संग्रह करके उसे राष्ट्र के कार्यों में अर्पित करनेवाले व्यक्ति वैश्य होते हैं। जैसे पैर समस्त शरीर का भार उठाते हैं उसी प्रकार सबकी सेवा, करनेवाले शूद्र कहलाते हैं।

समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए इन चारों वर्णों की सदा आवश्यकता रहती है। आज के युग में भी अध्यापक, रक्षक, पोषक और सेवक- ये चार श्रेणियाँ हैं ही। नाम कुछ भी रक्खे जा सकते हैं परन्तु चार वर्णों के बिना संसार का कार्य चल नहीं सकता। इन वर्णों में सभी का अपना महत्व और गौरव है, न कोई छोटा है, न कोई बड़ा, न कोई ऊँच है और न कोई नीच, न कोई अछूत है।

■

www.thearyasamaj.org

स्वामी श्रद्धानन्द और उनके विविध आन्दोलन

डॉ. सत्यकाम वर्मा

भारत में शिक्षा का तथाकथित आधुनिक युग लॉर्ड मैकाले के शिक्षा-प्रस्तावों की ब्रिटिश राजसत्ता द्वारा स्वीकृति के बाद से माना जाता है। परन्तु उन प्रस्तावों के व्यवहार में आने के कुछ वर्षों के भीतर ही एक महामनिषी ने यह अनुभव कर लिया कि शिक्षा की यह जीवन पद्धति वास्तव में भारत को सदा के लिए दासता की बेड़ियों में जकड़ देने वाली सिद्ध होगी। इसी महामनिषी को विश्व महर्षि दयानन्द के नाम से जानता है। महर्षि दयानन्द इस प्रक्रिया को पलटने के लिए व्यथित हो उठे। उन्हें लगा की भारतीय संस्कृति के मूल्यों को पुनःप्रतिष्ठा के लिए वह आतुर ही हो सकेगा। अत्यंत चिन्तन के बाद उन्होंने भारतीय शिक्षा-पद्धति के आमूल सुधार के लिए एक योजना प्रस्तुत की। उनकी यही योजना उनके अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय और तृतीय समुल्लास में एकत्र निबद्ध है। विदेशी सरकार से इस योजना को अपनाने की आशा करना तो व्यर्थ ही था, स्वयं अपने को नवप्रबुद्ध समझने वाले भारतीय भी इसे उपहास योग्य एवं प्रतिक्रियावादी घोषित करने लगे। विदेशी दासता में आबद्ध देशी राजा भी उनकी योजना को क्रियान्वित करके स्वयं को प्रतिक्रियावादी कहलाने को उद्यत नहीं थे। अपनी बहुविध व्यस्तता में महर्षि पूरा ध्यान इस ओर न लगा सकते थे। फिर भी उन्होंने कुछेक पाठशालाएँ अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थापित की। धनाभाव एवं प्रबन्धात्मक त्रुटियों के कारण ये संस्थाएँ अल्पकाल में ही कार्यविरत हो गई। परन्तु इनके मिटने के बाद भी ऋषि दयानन्द के शिक्षा-सिद्धान्त सदा-सदा के लिए अमर हो गए, यद्यपि इन्हें अमर करने का श्रेय उनकी दिव्य मृत्यु से प्रेरणा लेने वाली कुछ महान् आत्माओं को ही प्राप्त हुआ। उस दिव्य ज्योति के दर्शन करने वाले गुरुदत्त विद्यार्थी ने पंजाब में लौटकर शिक्षा-क्षेत्र में नई लहर दौड़ाई उसका स्फुरण यद्यपि डी.ए.वी. आन्दोलन के रूप में लाहौर में आरम्भ हुआ परन्तु उसकी पूर्ण आभा का प्रसार तो पावनी भागीरथी के तट पर हरिद्वार के निकट कांगड़ी, ग्राम में स्थापित 'गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी' की स्थापना के बाद ही हुआ, जो अपनी वर्तमान सम्पूर्ण कर्मियों के बाद आज भी भारत के मनीषियों को शिक्षा-सुधार की सही दिशा दिखाने के लिए उत्सुक है।

गुरुकुल-जन्म से पूर्वः- स्वयं अपने जीवनकाल में महर्षि 1858 से 1972 उके बीच कम से कम छह पाठशालाएँ गुरुकुल-पद्धति पर

www.thearyasamaj.org

स्थापित कीं। इनमें ब्रह्मचर्य, धर्माचरण और सबकी समानता पर आधारभूत रूप में बल दिया जाता था। परन्तु यह देश का दुर्भाग्य ही था कि दुष्प्रबन्ध, आदर्श सम्बन्धी अनियंत्रण एवं आन्तरिक विवादों के कारण अपने जन्म के छह वर्ष की भीतर इनमें से अधिकांश संस्थाएँ बन्द हो गईं।

सन् 1883 की 30 अक्टूबर के दिन महर्षि का महाप्रयाण हुआ। उनके अन्तिम क्षणों में उस बुझती दीपशिखा से श्री गुरुदत्त विद्यार्थी के रूप में जिस नई दीपशिखा ने ज्योति और प्रकाश पाया, उसने उनके महाप्राण के छह दिन के भीतर ही लाहौर के आर्य समाजियों के समक्ष प्रस्ताव रखा कि स्वामी दयानन्द की स्मृति को अमर बनाने का सर्वोत्तम और एकमात्र उपाय उनके शिक्षादर्शों को मूर्त रूप देने के लिए किसी विद्यालय या महाविद्यालय की स्थापना करना है। अत्यन्त श्रम और तैयारी के साथ सर्वप्रथम डी.ए.वी. स्कूल की स्थापना सन् 1886 में ही सम्भव हो पाई। इस आन्दोलन का यह परम सौभाग्य था कि ला. हंसराज जैसा महान् आदर्शवादी अध्यापक इसका प्रथम मुख्याध्यापक बना। उनकी ही अध्यक्षता में अगले आठ वर्ष के भीतर ही सर्वप्रथम डी.ए.वी. कॉलेज पूर्ण स्वतन्त्र इकाई के रूप में चल निकला। तब से इन 106 वर्षों के भीतर यह आन्दोलन दिन-दूनी रात चौगूनी गति से बढ़ता और फैलता ही आया है।

इस आन्दोलन के आधारभूत सिद्धान्तों में सांस्कृतिक धरोहर की भाषा के रूप में संसकृत की अनिवार्य शिक्षा, राष्ट्र की सर्वसुलभ भाषा के रूप में 'हिन्दी' की अनिवार्य शिक्षा, चरित्र-निर्माण के लिए अनिवार्य धर्म शिक्षा एवं आधुनिक युग से टक्कर लेने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाई आधुनिक अनिवार्य धर्म शिक्षा एवं आधुनिक युग से टक्कर लेने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाई आधुनिक शिक्षा की व्यवस्था करना सम्मिलित था। निश्चय ही तत्कालीन शिक्षा प्रणाली को अपनाते हुए भी इस आन्दोलन ने महर्षि की इच्छा को पर्याप्त सीमा तक पूरा किया। किन्तु अनिवार्य आश्रम पद्धति को यह आन्दोलन अपना नहीं सका। हाँ, इस आन्दोलन ने शहरी जनता में प्रबोधन फैलाने की दिशा में अनथक कार्य अवश्य किया। ब्रिटिश शिक्षा पद्धति का आमूल परित्याग न करने का एक कारण यह भी था कि इन संस्थाओं में दी जानेवाली शिक्षा सरकारी विश्वविद्यालयों से सम्बद्धता के कारण बनाई लीक पर चलने को बाध्य थी। अन्यथा इन संस्थाओं द्वारा दी जानेवाली उपाधियाँ एवं शिक्षा सरकार द्वारा अमान्य ठहरा दी जाती।

आर्य समाज की प्रथम कन्या पाठशाला- ब्रिटिश सरकार और विदेशी साम्राज्य की हर देन

www.thearyasamaj.org

को और गुलामी की भावना को मिटाने को मतवाले कुछ महानुभवों को ये दोनों प्रकार की कमियाँ शीघ्र ही खलने लगीं। इनसे भी अधिक जिस बात ने उन्हें व्यथित किया, वह था कन्या-शिक्षा का क्षेत्र। महर्षि एक समुन्नत राष्ट्र के लिए माता का समुचित शिक्षा से दीक्षित होना अनिवार्य मानते थे। उन्होंने बालक की सर्वप्रथम शिक्षिका माता को ही घोषित किया था। सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में इसी पक्ष पर सर्वाधिक बल दिया गया है। इसीलिए इन असन्तुष्ट लोगों ने यह अनुभव किया कि भारत को भावी माताओं के सही शिक्षण और प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी ही चाहिए। इसी उद्देश्य से महात्मा मुंशीराम और लाला देवराज ने जालन्धर में आर्य समाज का सर्वप्रथम कन्या-विद्यालय स्थापित किया। इसमें केवल अध्ययनक्रम में ही महर्षि इच्छओं के पालन का प्रयास नहीं किया गया, बल्कि उनकी ही इच्छानुसार शिक्षा की सर्वथा निःशुल्क व्यवस्था भी की गई। इसमें संस्कृत, अंग्रेजी एवं हिन्दी के अध्ययन के साथ स्त्रियों के लिए उपयोगी विषयों के अध्ययन की भी व्यवस्था की गई। इस प्रकार घरेलू अर्थशास्त्र, पाक विज्ञान, सिलाई-कढ़ाई आदि की शिक्षा को इतिहास, भूगोल, गणित आदि को शिक्षा के साथ अनिवार्य रूप से सम्बद्ध कर दिया गया। हिन्दी की पढ़ाई का अनिवार्य रूप से सम्बद्ध कर दिया गया। हिन्दी की पढ़ाई का अनिवार्य माध्यम घोषित कर दिया गया। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसे बिना किसी सरकारी सहायता के चलाया जा रहा था।

गुरुकुल की स्थापना- अपने इस परीक्षण से उत्साहित होकर उत्साहियों के इस दल ने प्रथम 'गुरुकुल' की स्थापना के लिए अपनी व्याकुलता व्यक्त करनी आरम्भ कर दी। परन्तु जनता से आवश्यक दान मिलने में अत्यन्त कठिनाई होने लगी। इस दल के आग्रणी महात्मा मुंशीराम को अनुभव हुआ कि बिना कोई क्रान्तिकारी कदम उठाए जनता को प्रेरित करना लगभग असम्भव ही रहेगा। इसीलिए अपने इस नए स्वप्न-'गुरुकुल' के लिए उन्होंने प्रथम अपनी सम्पत्ति दान कर दी और तब जनता से धन माँगने निकल पड़े। जब किसी तरह धन आने लगा तब छात्रों की भर्ती एक समस्या बन गई। महात्मा जी ने तब अपने ही दोनों पुत्रों को सबसे प्रथम विद्यार्थियों के रूप में इस गुरुकुल नाम के परीक्षण के लिए अर्पित कर दिया। आरम्भ में गुरुकुल की स्थापना गुजरांवाला में हुई। किन्तु 1901 में हरिद्वार के निकट कांगड़ी ग्राम में एक महादानी द्वारा भूमिदान देने पर वही गुरुकुल को परम पावनी भागीरथी के तट पर और हिमालय की गोद में स्थापित किया गया। महर्षि दयानन्द और वेद के उच्चतम आदर्शों के अनुकूल इस

www.thearyasamaj.org

स्थली पर गुरुकुल के स्थापित होते ही जैसे इस आन्दोलन में नए प्राण पड़ गए। ऐसे पावन वातावरण में गुरुकुल अपने मूल आदर्शों को पाने में अत्यधिक समर्थ हो सका। सचमुच ही यह नई भूमि, साधना, निष्ठा और त्याग की भावनाओं को सजीव और मूर्त करनेवाली थी। 1902 में गुजरांवाला कांगड़ी' के नाम से जाना जाने लगा। पिछले 62 वर्ष से यह संस्था दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ती हो गई है।

आरम्भ और विकास- जब गुरुकुल कांगड़ी की आरम्भ में स्थापना हुई थी, तब सम्भवत: इसके संस्थापकों के मन में इसके भावी विस्तार का पूरा स्वप्न भी न था। उन्होंने आरम्भ में महर्षि के आदर्शों को केवल भारतीय संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन तक ही सीमित मान लिया था। किन्तु कालान्तर में जहाँ यह आवश्यक समझा गया कि गुरुकुल का प्रत्येक स्नातक वैदिक और संसकृत साहित्य से पूर्ण परिचित एवं उनमें निष्णात होना चाहिए, वहाँ यह भी स्पष्ट हो गया कि यदि गुरुकुल-आन्दोलन को ब्रिटिश शिक्षा-पद्धति के समानान्तर एक प्रणाली के रूप में चलाना है तब उसमें भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विविध विषयों में नैपुण्य के लिए व्यवस्था करनी होगी। विषयों की इस विविधता का अर्थ था विविध महाविद्यालयों की स्थापना करना। उन सब में अलग-अलग विषयों का अलग-अलग पाठ्यक्रम होना अनिवार्य था। कुछ आरम्भिक वर्षों में ही वेद-विभाग, संस्कृत-विभाग, तुलनात्मक धर्म-विज्ञान विभाग, आदि की स्थापना हो गई। सन् 1920 में आयुर्वेद-विभाग की भी स्थापना हुई, जिसे अगले दो वर्षों में ही एक पृथक् महाविद्यालय के रूप में मान्यता मिल गई। बहुत शीघ्र ही विश्वविद्यालय के रूप में गुरुकुल को परिवर्तित करने की आवश्यकता अनुभव होने लगी। एक कारण यह भी था कि कुरुक्षेत्र, मुलतान और सुपा (नवसारी-गुजरात) आदि में भी इसी गुरुकुल की माध्यमिक शिक्षा तक की स्वतन्त्र शाखाएँ स्थापित हो गई थीं। उन सब जगहों पर गुरुकुल कांगड़ी का ही पाठयक्रम चलता था। शीघ्र ही तीन स्वतन्त्र महाविद्यालय अस्तित्व में आ गए। संस्कृत या कला-महाविद्यालय के अन्तर्गत ही विज्ञान और दर्शन आदि के स्वतन्त्र विभाग भी खुल गए।

विश्वविद्यालय का रूप- आरम्भ में एक ही स्नातक-उपाधि 'अलंकार' को पर्याप्त समझा गया था। विद्यालंकार, सिद्धान्तालंकार के स्थान पर वेदालंकार उपाधि सम्मिलित हुई। इस प्रकार इन तीन महाविद्यालयों ने इस संस्था को विश्वविद्यालय के रूप में पलट दिया गया। किन्तु विश्वविद्यालय के रूप में बदलते ही स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई की भी बात उठी। सत्य तो यह है कि आरम्भ से ही गुरुकुल में केवल अंग्रेजी का

www.thearyasamaj.org

स्तर ही बी.ए. तक का रखा गया था, शेष सभी विषयों में यहाँ की उपाधि परीक्षा का स्तर लगभग तत्कालीन और वर्तमान एम.ए. तक का था। एक अन्य विशेषता यह भी कि वेद के अनिवार्य अध्ययन के अतिरिक्त कम से कम पाँच विषय विद्यार्थी को लेने पड़ते थे। इनमें अर्थशास्त्र, इतिहास, विज्ञान, वैदिक साहित्य, हिन्दी-साहित्य आदि विषय अन्तर्गृहीत थे। इनमें विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार विषयों का चुनाव कर सकता था। अंग्रेजी, संस्कृत सबके लिए अनिवार्य ही थे। भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन के अध्यापन की पृथक्-पृथक् व्यवस्था थी। कह सकते हैं कि सामान्यतः इस उपाधि का स्तर बाहर की ऑनर्स उपाधि के बराबर माना जा सकता था, यद्यपि संस्कृत, हिन्दी और वेद की दृष्टि से प्रत्येक विद्यार्थियों एम.ए. स्तर तक के ज्ञान से संयुक्त हो जाता था।

अतः स्वाभाविक था कि स्नातकोत्तर स्तर की अलग पढ़ाई आरम्भ करने का अर्थ था, उस स्तर पर शोध की प्रवृत्ति का प्रवर्धन। इस प्रकार आज के एम.ए. से उच्च स्तर तथा आज की पीएच.डी. के लगभग समकक्ष 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि के लिए अध्ययन का विधान किया गया, जिसके लिए आवश्यकता होने पर छात्रों को बाहर के विश्वविद्यालयों में भी अध्ययनार्थ भेजा जाता था। इस प्रकार विश्वविद्यालय होने की पूरी क्षमता गुरुकुल में हो चुकी थी।

इस सर्वतन्त्रस्वतन्त्र एवं स्वाश्रित विश्वविद्यालय की पढ़ाई के स्तर का अनुमान दो ही बातों से लगाया जा सकता है, इसके 'विद्यालंकार' को भारतविद्या के सर्वोच्च केन्द्र पेरिस के सारबोन विश्वविद्यालय में सीधा ही डी. लिट् की उपाधि के लिए प्रवेश मिल जाता था और इसके आयुर्वेदालंकारों को तत्कालीन मेडिकल शिक्षा के मूर्धन्य स्त्रोत जर्मनी में एम. डी. लिट् की उपाधि के द्वितीय वर्ष में सीधा प्रवेश मिल जाता था। इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है कि तब तक भारतीय विश्वविद्यालयों और भारतीय सरकार में से किसी एक ने भी इस नवजात विश्वविद्यालय की डिग्रियों को मान्यता नहीं दी थी।

हिन्दी का बल- गुरुकुल कांगड़ी की इतने अल्प समय में यह महान् आश्चर्यकारी प्रगति का सारा श्रेय निर्विवाद रूप से उस अकेले महान् कर्मयोगी को जाता है, जिसने अपने साथियों के निराश होने पर भी आशा न छोड़ी और जो अपना सर्वस्व अर्पण करने मात्र से ही सनतुष्ट न होकर देश भर से धन और विद्वद्रत्न जुटाने में बेजोड़ सिद्ध हुआ। वह स्वयं विद्वान् न था, परन्तु अपने समय के मूर्धन्य विद्वानों को चुनने में न उसने धर्म को आड़े आने दिया और न ही तथाकथित डिग्रियों को। वह किसी भी अवर कोटि की बात

www.thearyasamaj.org

और अवर कोटि के व्यक्ति का चयन कर ही न सकता था। बालकों के चरित्र-निर्माण के साथ-साथ उन्हें सर्वश्रेष्ठ स्नातक बनाने की लालसा का वह मतवाला अपने आदर्शों को पाने के लिए सब कुछ लुटा सकता था। अपना हिन्दी प्रेम सिद्ध करने के लए जिसने एक ही रात में 'सद्धर्मप्रचारक' को उर्दू से बदलकर हिन्दी में निकालना शुरू कर दिया था, वह भला हिन्दी को शिक्षा का सब स्तरों पर माध्यम बनाने से केवल इसलिए क्यों रुक जाता कि तब हिन्दी में अमुक-अमुक विषयों की कोई भी पाठ्य पुस्तकें न थीं। वह जानता था, जहाँ चाह वहीं राह। जब एक बार हिन्दी को उच्चतम स्तर तक की सम्पूर्ण शिक्षा का माध्यम बना ही दिया, तब उन स्तरों की हिन्दी-पुस्तकें भी तैयार होने लगीं। अन्य किसी भी भारतीय विश्वविद्यालय ने इस दिशा में कई दशकों बाद कदम उठाने आरम्भ किये। यहाँ तक मेडिकल विषयों की शिक्षा भी हिन्दी माध्यम से ही दी जाती थी, यद्यपि उनकी सभी पुस्तकें अंग्रेजी में ही थीं। छात्रों को अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी का एक समान अधिकार होने से ऐसा होना असम्भव न था। इस प्रकार संस्कृति के क्षेत्र में क्रान्ति का व्रत लेकर चलनेवाली संस्था ने महर्षि दयानन्द द्वारा घोषित 'आर्यभाषा' को शिक्षा का माध्यम बनाकर देश की भावी राष्ट्रभाषा की समृद्धि की सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख आधारशिला भी रख दी।

आचार पर बल- हिन्दी पर इस बल के अतिरिक्त अन्य भी कई विशेषताएँ थीं गुरुकुल आन्दोलन की। संस्कृति की रक्षा केवल वैदिक साहित्य और संस्कृत पढ़ाने मात्र से ही होनी सम्भव न थी। उसके लिए जिन आचारनिष्ठ स्नातकों की आवश्यकता थी, उनका निर्माण आश्रम-वास और गुरुसामीप्य के बिना असम्भव था। गुरुकुल-पद्धति में आश्रमवास को अनिवार्य कर दिया। बहुत काल तक यह नियम ही था कि वहाँ पढ़ानेवाले अध्यापकों के अपने बालक भी अन्य विद्यार्थियों के साथ आश्रम में ही नियमितरूप से ब्रह्मचारी बनकर रहेंगे। न कोई विवाहित व्यक्ति गुरुकुल का छात्र ही बन सकता था और न ही गृहस्थ में रहनेवाला छात्र केवल दैनिक अध्ययन के लिए गुरुकुल में दाखिल ही हो सकता था। जहाँ इससे छात्रों की संख्या अत्यन्त सीमित रह जाती थी, वहाँ नियमित रूप से छात्रों पर अधिक ध्यान भी दिया जाता था। शिक्षा सर्वथा निःशुल्क होने के कारण छात्र-संख्या के कम वा अधिक होने से अध्यापकों की संख्या या योग्यता के मानदण्ड में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। शिक्षा की उच्चता पर पूरा बल देने के लिए आश्रम-वास अत्यन्त नियमित रूप में चलाया जाता था। आज के पब्लिक स्कूलों के बोर्डिंग सिस्टम की भाँति यहाँ

www.thearyasamaj.org

छात्र को यथेच्छ रूप में व्यवहार, पहनने और खाने को छूट नहीं थी। खाने, पहनने और दिनचर्या के मामले में यहाँ सचमुच ही राजा और रंक के लड़के सर्वदा एक ही स्तर के होकर रह सकते थे। माता-पिता के सम्पर्क से दूर और प्रथम दस वर्षों में घर के वातावरण से मुक्त रहनेवाले विद्यार्थी प्रातः ही एक-दूसरे की जाँति-पाँति और धनगत उच्चता-नीचता से सर्वथा अपरिचित रहकर एक सामाजिक आधार पर ही पोषण पाते थे। समानता के सिद्धान्त का ऐसा पालन सम्भवतः ही विश्व भर के किसी और विश्वविद्यालय में इस सीमा और स्तर पर हुआ होगा। आदर्शों के ऐसे धनी महात्मा मुंशीराम से यदि महात्मा गाँधी ने अपने भावी आश्रमों के जीवन की प्रेरणा और रूपरेखा ली हो, तो इसमें आश्चर्यान्वित होने की आवश्यकता नहीं। महात्मा गाँधी स्वयं इस सत्य को स्वीकारते संकोच नहीं करते थे। भेदभाव से हीन और समानता पर आश्रित भारतीय समाज की यदि कभी नींव पड़ेगी, तो केरल गुरुकुलीय पद्धति के इस आदर्श से ही।

प्रमुख विशेषता- इन सबसे बढ़कर गुरुकुल कांगड़ी की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि महर्षि के सत्यार्थप्रकाश में वर्णित सच्ची देश भक्ति एवं सच्चे देश प्रेम से प्रेरणा पाकर यहाँ के अध्यापक और छात्र आरम्भ से ही भारत की आजादी के लिए मतवाले रहे हैं। अंग्रेज सरकार ने भले ही यह गलत बात मान ली थी कि गुरुकुल की स्थापना किसी सशस्त्र क्रान्ति के लिए की गई थी, किन्तु उसका अनुमान इस सीमा तक सही था कि गुरुकुल का सारा वातावरण ही उन दिनों जिस राष्ट्रीय गौरव और पुनरुत्थान की भावना से भरा हुआ था, वह किसी भी सामान्य सशस्त्र क्रान्ति की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ी क्रान्ति का प्रतीक था। दिल्ली के चान्दनी चौक में गोरों के भाड़े के सैनिकों के आगे अपनी छाती नंगी कर देनेवाले स्वामी श्रद्धानन्द के चेले यदि सत्याग्रहों और क्रान्तियों में भाग लेने और हँसते-हँसते मर जाने में पीछे न रहे हों, तब आश्चर्य ही क्या? खादी, सादा जीवन, हिन्दी-प्रेम और नशाबन्दी के लिए भले ही गाँधी जी को आन्दोलन करने पर भी अपने ही अनुयायियों तक से निराश होना पड़ा हो, किन्तु गुरुकुल के किसी भी व्यक्ति के लिए जीवन का एकमात्र मार्ग वही था। त्याग, आत्मविश्वास और दृढ़ता का ऐसा स्वाभाविक मिश्रण कहीं अन्यत्र देखने का मिला हो, ऐसा पता नहीं चलता।

और इस सब को जगानेवाला मूर्तिमन्त अग्रदूत था महात्मा मुंशीराम, जो बाद में सन्यासी बनकर स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुआ और देश के चोटी के नेताओं में से एक रहा।

●

www.thearyasamaj.org

श्रद्धामूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द

-श्री यशपाल आर्यबंधु

स्वनामधन्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज अपने नाम के अनुरूप ही श्रद्धा की मूर्ति थे। उनके जीवन की यह विशेषता थी कि उन्होंने जो भी कहा उसे करके भी दिखा दिया। वैसे तो उनका समस्त जीवन ही प्रेरणादायक है। उस प्रेरणादायक प्रसंग को हम आर्य जनता के सम्मुख कर श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर उस अमर बलिदानी की याद दिलाना चाहते हैं।

बात उन दिनों की है, जब आर्य समाज लाहौर का वार्षिकोत्सव चल रहा था। उस समय के आर्य समाज के वार्षिकोत्सवों की शान ही कुछ निराली हुआ करती थी। विशेषता यह है कि प्रत्येक वक्ता की बात को बड़ी गम्भीरता से सुना जाता था। जब गुरुकुल खोलने का विषय प्रस्तुत हुआ तो उस पर पर्याप्त वाद-विवाद उठ खड़ा हुआ। जब बहुत देर तक वाद-विवाद चलता रहा तो एक आवाज सुनाई दी। आवाज यह थी- 'अच्छा प्रधान जी! अब आपकी भी सुननी चाहिये।' प्रधान थे स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज। प्रधान जी ब्रह्मचर्याश्रम-पूर्वक गुरुकुल शिक्षा पद्धति की आवश्यकता पर प्रकाश डाल रहे थे और उसकी स्थापना पर बल दे रहे थे। इतने में जनता में से एक धीमी सी आवाज फिर सुनाई दी और वह आवाज इस प्रकार थी- 'धन कहाँ से आयेगा?' बस फिर क्या था प्रधान जी गरज उठे- 'मुन्शीराम जब तक तीस हजार रुपये जमा नहीं कर लेगा, उसका घर में घुसना हराम होगा।'

प्रधान की इस सिंहगर्जना के साथ गुरुकुल खोलने न खोलने विषयक विवाद समाप्त हो गया। फिर भी लोग सोचने लगे कि प्रधान जी ने भावावेश में आकर ऐसी घोषणा कर दी है। भला इतना रुपया कहाँ से आयेगा? लोग धन को एकत्रित कर लेना असम्भव मान रहे थे। पर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज वाणी या कथनी के ही धनी नहीं, करनी के भी धनी थे। वे जो चाहते थे, उसे करके भी दिखाते थे।

मुन्शीराम जी जब-जब भी अपने घर जालंधर वापिस आया करते थे, तो प्रायः घोड़ागाड़ी उनको लिवाने के लिये पहुँच गई। किन्तु इस बार घोड़ा-गाड़ी घर की ओर न जाकर आर्य समाज मन्दिर की ओर मुड़ गई। इस सम्बन्ध में पं. इन्द्र जी लिखते हैं कि- 'एक दिन हम लोग बहुत आशंकित हो गए क्योंकि पिता जी का सामान गाड़ी से उतार कर घर नहीं लाया गया। कोचवान ने अन्दर आकर कहा कि- बाबू जी ने अपना सामान समाज मन्दिर में ही उतरवा लिया है और कहा है कि घर पर जाकर खबर कर दो कि बाबू जी घर पर नहीं आयें और समाज मन्दिर

www.thearyasamaj.org

में उतर गए हैं। इस समाचार ने घर पर तहलका सा मचा दिया। हम चारों बच्चे घबरा कर ताई जी के चारों और इकट्ठे हो गये। ताई जी को यह सन्देह हुआ कि पिता जी किसी बात से नाराज होकर घर में नहीं आ रहे हैं। कुछ समय के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि समाज मन्दिर में जाकर नाराजगी का कारण पूछा जाये।'

ताई जी ने नौकर को आर्य समाज मन्दिर में यह पूछने के लिए भेजा कि हम लोग मिलने के लिए आना चाहते हैं, कोई रूकावट तो नहीं है। रणुआ नौकर पांच-सात मिनिट में ही लौट आया। वह उत्तर लाया कि मिलने में कोई रूकावट नहीं है। हम सब मिलने के लए चल दिये। पिता जी समाज मन्दिर के द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे थे। वे गम्भीर मुद्धा में थे। ताई जी की घबराहट देखकर शान्त करते हुए प्रारम्भ में ही उन्होंने कहा- 'भाभी मैंने लाहौर में प्रतिज्ञा कर ली है कि जब तक गुरुकुल बनाने के लिए तीस हजार रुपया इकट्ठा न कर लूंगा, तब तक घर में पैर नहीं रखूंगा। इसी कारण में ठहरा हूँ। घबराने की कोई बात नहीं है। कोई चिन्ता मत करो।'

इस प्रकार वह अनोखा फकीर घर से निकल पड़ा भिक्षाटन के लिये। पं. सत्यदेव विद्यालंकार इस पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि-तीस हजार रुपए इकट्ठा करना उस समय मामूली बात न थी। पर वह था धुन का पक्का। उसे यह सवाल हल करना ही था कि- 'कौमें पागलों के पीछे पागल होती है।?'' दिल्ली उस समय राजधानी न थी- पर उसे अभी बादशाहत के दिन याद थे। वहां भी अमीर, रईस और दानिशमन्द लोगों की कमी न थी। एक आम जलसा बुलाया गया। उसमें इस अजब भिखारी ने फिर झोली पसारी। लोग हंस दिये। एक साथी ने खड़े होकर अपील करनी शुरू की- 'यह फरिश्ता है, गदाय वतन है- यह भीख मांगता है, इल्म के लिये। अमीरो! रईसो! देहली की लाज बचाओ इस फकीर की झोली भर दो, यह फकीर तुमसे मांगकर तुम्हे ही खिलाने वाला फकीर है, तुम समझते हो कि यह अमीर है। पर दौलत का नहीं दिल का। इसकी दिली फकीरी में कुछ भीख डाल दो। अपनी सारी कमाई दे चुका है- फिर भी धूनी रमाकर कौम के लये भीख माँग रहा है। कहता है- हिमालय से भी शुभ ब्रह्मचर्याश्रम, ऋषियों का तपोवन हिमालय के सामने खड़ा करना है। यही इसकी आस है। इसी के वास्ते यह रात-दिन भीख मांगता है। वे खुदगर्ज हैं जो दलित पे जान देते हैं- देखना खाली न लौटे। इसे एक ज्ञान गंगा बहा लेने दो। यह वह गंगा होगी जिसमें हमारे पाप धुलेंगे। ढेर लगा दो चांदी का, लोग कहें कि दिल्ली अब भी जिन्दा है। इसकी फकीरी झोली की लाज तुम्हारे हाथ में है, उस फकीर ने घर-बार छोड़कर बनवास लिया है। कहीं इसकी आँखों से आँसू टपक पड़ा तो कहर आ जायेगा। यहाँ से जाए तो झोलियाँ भर-भर कर जाये। कौम के फकीर की

www.thearyasamaj.org

झोली खाली न रह जाये। सब ओर शान्ति थी। उस समय पागल फकीर की झोली भरी और खूब भरी।

पाठकवृन्द! सामान्य भिक्षु अपने लिए मांगता है और वह भी परमात्मा, अल्लाह, खुदा या मालिक के नाम पर मांगता है। किन्तु यह ऐसा अनोखा भिक्षु है जो अपने लिए नहीं मांगता। जाति के लिए मांगता है, कौम के लिए मांगता है। फिर पैसा-दो पैसे नहीं मांगता।पूरे तीस हजार रुपए मांगता है। इसकी का परिणाम था कि छः मास की अल्पावधि में ही इतनी बड़ी राशि एकत्रित हो गई कि जिससे गुरुकुल की स्थापना हो सकी और फिर ब्रह्मचारियों के प्रवेश का प्रश्न आया तो सर्वप्रथम अपनी सन्तान उसको समर्पित कर दी। आचार्य का प्रश्न आता है तो स्वयं को प्रस्तुत कर देता है। ऐसा यह भिक्षु जिस का नाम था 'श्रद्धानन्द संन्यासी'।

आज कहाँ हैं ऐसे आदर्श त्यागी, तपस्वी आर्य नेता जो करनी के धनी हों। जो कहते हों वे करके दिखाते हों और फिर कबीर की भाँति यह कह सकने का साहस भी रखते हों कि-

कबीर खड़ा बाजार में,
लिये लकुठिया हाथ।
जो घर फुंके आपना,
चले हमारे साथ।

उस अमर बलिदानी के पावन बलिदान दिवस पर हमार-शत-शत प्रणाम।

महापुरूषों में अग्रणी को याद करो

जिस क्षण देह मे दुर्बलता प्रतीत हो उसी क्षण एक महान् विशालकाय व्यक्तित्व को याद करो। जब तुम्हारे मन में शिथिलता या कायरता का प्रवेश हो, उसी क्षण जीवन और उत्साह से ओत-प्रोत उस तेजस्वी देश-भक्त का स्मरण करो। जिस क्षण तुम्हारे हृदय में मोह और विलास का साम्राज्य प्रवेश हो, उसी क्षण धन को ठोकर मारने वाले उस नैष्ठिक ब्रह्मचारी को याद करो। अपमान से आहत होकर जिस क्षण तुम अपनी नजर ऊँची न उठा सको, उसी क्षण हिमालय के समान अडिग और उन्नत व्यक्ति के मुख को अपनी कल्पना में उपस्थित करो।

मृत्यु वरण करते हुए डर लगे तो उस निर्भयता की मूर्ति का ध्यान करो। द्वेष भाव से उत्तप्त होकर जब तुम अपने विरोधी को क्षमा करने में हिचकिचाहट का अनुभव करो तो उसी क्षण विष पिलाने वाले को अशीर्वाद देते हुए एक राग द्वेष से विमुक्त सन्यासी को याद करो। वह महान व्यक्ति **"महर्षि दयानन्द"** है और यह गौरवशाली पुरूष भारतीय महापुरूषों में अग्रणी स्थान पर विराजमान है।

- श्री रमन लाल देसाई
(गुजराती उपन्यासकार)

www.thearyasamaj.org

महर्षि दयानन्द की सार्वभौम मान्यताएँ

- लेखक आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री, नई दिल्ली

ग्रन्थ रचना का प्रयोजन :–

1. मेरा सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्यासत्य अर्थ का प्रकाश करना है। अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाए। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है।

विद्वानों का कर्त्तव्य :–

2. विद्वानों, आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश या लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।

3. यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान प्रत्येक मत में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धांत अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल, सब में सत्य है, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरूद्ध बातें हैं, उसका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।

4. यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्यप्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतवालों के साथ भी बर्तता हूँ। तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है।

5. जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते हैं और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्यस्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् है। और जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है यही मनुष्य कहाता है, और जो स्वार्थवश हो कर परहानिमात्र करता रहता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

6. एक मनुष्य जाति (को) बहका कर विरूद्ध बुद्धि कराके, एक दूसरे को शत्रु बना, लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहि है।

मनुष्यों का कर्त्तव्य :–

7. मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें। उससे भिन्न की कभी न करें।

परमेश्वर के उपकारक:–

8. जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण, कर्म, स्वभाव है, वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं।

सन्तानों के उपकारक:–

9. वस्तुत: जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान! जिसके मातापिता धार्मिक विद्वान हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता।

ज्योतिषशास्त्र:–

10. (पूर्व) तो क्या ज्योतिष–शास्त्र झूठा है? (उत्तर) नहीं, तो उसमें अंक बीज, रेखागणित विद्या है, वह सब सच्ची, जो फल की लीला है, वह सब झूठी है।

प्रतिज्ञापालन:–

11. जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करने वाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करने उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिए।

छल का लक्षण:–

12. 'छल' और 'कपट' उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर और रख दूसरे को मोह में डाल और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना।

मातादि का कर्त्तव्य:–

13. सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और संबंधियों का मुख्य कर्म है।

परोपकार:–

14. जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस जगत् के पदार्थ रचे हैं, वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिए।

सुख का एक कारण:–

15. सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धियुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दु:ख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

पौष्टिक भोजन:–

16. मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें, तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके।

आर्ष ज्ञान का महत्व:–

17. महर्षि लोगों का आशय जहां तक हो सके वहां तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय

www.thearyasamaj.org

थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहां तक बने वहां तक कठिन रचना करनी, जिसको बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना कौड़ी का लाभ होना और आर्ष ग्रन्थों को पढ़ना ऐसा है जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

वेद महिमाः–

18. सब मनुष्य वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुना कर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों।

19. जैसे परमेश्वर ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सब के लिए बनायें हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किये हैं।

स्त्री पुरूष दोनों शिक्षित हों:–

20. भला जो पुरूष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरूष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे फिर सुख कहां?

विवाह सम्बन्ध का निर्णयः–

21. (पूर्व) विवाह करना माता-पिता के अधीन होना चाहिए वा लड़का-लड़की के अधीन रहे? (उत्तर) लड़का लड़की के अधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए, क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता है और सन्तान उत्तम होती है। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है।

योग्यता से ही उच्चता:-

22. जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे हीं ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीचे के काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिए।

श्राद्ध का अभिप्रायः–

23. उस सब को अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दरयान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस-जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी, वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है।

www.thearyasamaj.org

दाम्पत्य समन्वयः-

24. जो एक दूसरे के आधीन काम है, वह-वह आधीनता से ही करना चाहिये जैसा कि स्त्री और पुरूष एक दूसरे के आधीन व्यवहार अर्थात् स्त्री-पुरूष का और पुरूष-स्त्री का परस्पर प्रियाचरण अनुकूल रहना, व्यभिचार वा विरोध कभी न करना, पुरूष की आज्ञानुकूल घर के काम स्त्री और बाहर के काम पुरूष के आधीन रहना।

दम्पती का कर्त्तव्यः-

25. जब विवाह होवे तब स्त्री के साथ पुरूष और पुरूष के साथ स्त्री बिक चुकी अर्थात् जो स्त्री और पुरूष के साथ हाव, भाव, नखशिखपर्यन्त जो कुछ है वह वीर्यदि एक दूसरे के आधीन हो जाता है। स्त्री या पुरूष प्रसन्नता के बिना कोई भी व्यवहार न करें।

संन्यासी का कर्त्तव्यः-

26. संन्यासी जब गृहस्थों से अन्न वस्त्रादि लेते हैं और उनका प्रत्युपकार नहीं करते तो क्या वे महापापी नहीं होंगे? जैसे आंख से देखना, कान से सुनना न हो तो आंख और कान का होना व्यर्थ है, वैसे जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि सत्यशास्त्रों का विचार, प्रचार नहीं करते तो वे भी जगत् में व्यर्थ भार रूप हैं।

राजा स्वेच्छाचारी न होः-

27. एक को स्वतंत्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए। किन्तु राजा जो सभापति तदाधीन सभा, समाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।

28. स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देना, श्रीमान् को लूट खूंट अन्याय से दण्ड ले के अपना प्रयोजन पूरा करेगा।

राज्य की प्रगतिः-

29. जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

30. नियमों के आधीन सब लोग वर्त्तें, सब के हितकारक कामों में सम्मति करें, सर्वहित करने के लिए परतन्त्र और धर्मयुक्त कामों में अर्थात् जो जो निज के काम हैं उनमें स्वतन्त्र रहें।

राजा प्रजा सम्बन्धः-

31. प्रजा के धनाढ्य आरोग्य खान-पान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है, प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवें और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरूषों को जानें।

www.thearyasamaj.org

32. यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है। जो राजा न हो तो प्रजा किस की कहावें? दोनों अपने-अपने काम में स्वतन्त्र और मिले हुए प्रीतियुक्त काम में स्वतन्त्र रहें। प्रजा की साधारण सम्मति के विरूद्ध राजा व राजपुरूष न हों। राजा की आज्ञा के विरूद्ध राजपुरूष व प्रजा न चलें।

दण्ड व्यवस्थाः-

33. (पूर्व) जो राजा का राणी अथवा न्यायाधीश वा उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करें तो उसको कौन दण्ड देवे? (उत्तर) सभा अर्थात् उनको तो प्रजापुरूषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिए। (पूर्व) राजादि उनसे दण्ड कयों ग्रहण करेंगे? (उत्तर) राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड क्यों मानेंगे और जब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता से दण्ड देना चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है? जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरूष अन्याय में डूब कर न्यायधर्म को डूबा के सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जाएं।

34. न्याययुक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है जो उसका लोप करता है, उससे नीच पुरूष दूसरा कौन होगा।

35. (पूर्व) यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं, क्योंकि मनुष्य किसी अंग का बनाने हारा या जिलाने वाला नहीं है, इसलिये ऐसा दण्ड न देना चाहिए। (उत्तर) जो इस को कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते, क्योंकि एक पुरूष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम को छोड़कर धर्ममार्ग में स्थित रहेंगे। सच पूछो तो यही है कि एक राईभर भी यह दण्ड सब के भाग में न आवेगा, और जो सुगम दण्ड किया जाय तो दुष्ट काम बहुत बढ़ कर होने लगे। वह जिसको तुम सुगम दण्ड कहते हो वह करोड़ों गुणा अधिक होने से करोड़ों गुणा कठिन होता है, क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा थोड़ा दण्ड भी देना पड़ेगा, अर्थात् जैसे एक की मन भरदण्ड हुआ और दूसरे को पाव भर तो पाव भर से अधिक एक मन दण्ड होता है तो प्रत्येक मनुष्य के भाग में आधापाव बीस सेर दण्ड पड़ा तो ऐसे सुगम दण्ड को दुष्ट लोग क्या समझते हैं?

36. जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझें उन उन नियमों को पूर्ण

www.thearyasamaj.org

विद्वानों की राजसभा बांधा करे।

36. जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझें उन उन नियमों को पूर्ण सिद्धानों की राजसभा बांधा करे।

आत्मिक और शारीरिक बलः—

37. जो केवल आत्मा का बल अर्थात् विद्या ज्ञान बढ़ाते जायें और शरीर का बल न बढ़ायें तो एक ही बलवान् पुरूष सैकड़ों ज्ञान और विद्वानों को जीत सकता है। और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाय आत्मा का नहीं तो राज्यपालन की उत्तम व्यवस्था बिना विद्या के कभी नहीं हो सकती। बिना व्यवस्था के सब आपस में फूट टूट, विरोध, लड़ाई, झगड़ा करके नष्ट भ्रष्ट हो जायें। इसलिए सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिए।

आस्तिक भावनाः—

38. जो सब दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव विद्यायुक्त और जिसमें पृथ्वी, सूर्य आदि लोकस्थित हैं और जो आकाश के समान व्यापक सब देवों का देव परमेश्वर है उसको जो मनुष्य न जानते न मानते और उसका ध्यान नहीं करते वे नास्तिक, मन्दमति सदा दुःख सागर में डूबे ही रहते हैं, इसलिए सर्वदा उसी को जानकर सब मनुष्य सुखी होते हैं।

वेद में एकेश्वरवादः—

39. (पूर्व) वेद में ईश्वर अनेक हैं इस बात को तुम मानते हो या नहीं? (उत्तर) नहीं मानते, क्योकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा, जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों। किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है।

40. (पूर्व) वेदों में अनेक देवता लिखें हैं उसका क्या अभिप्राय है? (उत्तर) देवता दिव्यगुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं, जैसे कि पृथिवी। परन्तु इसको कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। देखो! इसी (ऋ, 1, 164, 39) मन्त्र में कि 'जिसमें सब देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर हैं।' यह उनकी भूल है जो देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं।

ईश्वर का अनुभवः—

41. और जब आत्मा मन और इन्द्रियों को किसी विषय में लगातार वा चोरी आदि बुरी व परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में प्रारम्भ करता है उस समय जीव की इच्छा ज्ञान आदि उसी इच्छित विषय पर झुक जाते हैं, उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय शंका और लज्जा तथा

www.thearyasamaj.org

अच्छे कामों के करने में अभय, निशंक्ता और आनन्दोत्साह उठाता हैं वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते है।

ईश्वर का स्वरूप:-

42. (पूर्व) ईश्वर व्यापक है, वा किसी देश विशेष में रहता है? (उत्तर) व्यापक है, क्योंकि जो एकदेश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सबका स्रष्टा, सबका धर्ता और प्रलयकर्ता नहीं हो सकता, अप्राप्त देश में कर्ता की क्रिया का असम्भव है।

न्याय और दया विवेक:-

43. न्याय और दया का नाम मात्र का ही भेद है, क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बद्ध होकर दुःखों को प्राप्त न हों। वही दया कहाती जो पराये दुःखों को छुडाना।

44. जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिए उसी का नाम न्याय है। और जो अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो दया का नाश हो जाय। क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्त्रों धर्मात्मा पुरूषों को दुःख देना है। जब एक के छोड़ने से सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है वह दया किस प्रकार हो सकती है? दया वही है कि उस डाकू को कारागार में रख कर पाप करने से बचाना।

45. संसार में सच्चा झूठा दोनों सुनने में आता है परन्तु उसको विचार से निश्चय करना अपना काम है। देखो ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ जगत् में सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रखें हैं। इससे भिन्न दूसरी बड़ी दया कौन सी है?

46. अविद्यायुक्त मूर्ख वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिसको धर्म बतायें उसको कभी न मानना चाहिए। क्योंकि जो मूर्ख के कहे हुये धर्म के अनुसार चलते हैं, तो उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं। इसलिए तीनों अर्थात् विद्यासभा, धर्मसभा और राज्यसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करें। किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरूषों का स्थापन करें।

वैदिक धर्म की जय
दयानन्द की जय

www.thearyasamaj.org

दान कर अपनी कमिया दूर करे

- लेखक- डॉ० अशोक आर्य, गाजियाबाद

हम रोग क्रामियों से लड़े, हमारा प्रत्येक अंग शक्तिशाली हो, मन शिव संकल्प वाला हो, हम धन आदि दान करते हुए अपनी कमियों को दूर हटा कर इन्हें शुद्ध करे। यजुर्वेद प्रथम अध्याय का यह 25 वा मंत्र इस पर ही उपेदश करते हुए कहा है कि :-

स वर्चसा पथसा संतनुभिरगन्महि
मनसा स शिवेन।
त्वष्ट सुदत्रो विदधातु रायोनुमार्ष्टु
यद्विलिष्टम॥ यजुर्वेद ॥ 1.24 ॥

जब मानव अपने यत्न से, अपने प्रयास से राक्क्षसी प्रवृतियों को अपने से दूर करने से सफल हो जाता है तो यह अपने संबंध में प्रभु से कुछ प्रार्थना करने की स्थिति में आ जाता है। अब वह प्रभु से प्रार्थना करता है कि :-

1. हे प्रभु हमारे में ऐसी शक्ति हो कि हम अपने अंदर के जो रोगाणु है, जो रोग बटाने तथा फैलाने वाले कीट आदि हमारे अंदर निवास कर रहे है, उन्हें मारने मे हम सदा सफल हो। इस जगत में बहुत से लोग तो ऐसे है कि जो बुराई से लड़ने का साहस ही नहीं करते और अनेक ऐसे भी होते है जो अकारण ही लड़ाई करते रहते हैं किंतु मंत्र उपदेश करता है की बुराई तथा रोग के कीटाणुओं से हम कभी लड़ने से पीछे न हटे। यह रोग के कीटाणु जब फैल जाते हैं तो हमारे लिए भयंकर रोग परेशानी का कारण हो जाते है। इस लिए पैदा होते ही इनका विनाश उत्तम होता है। इस लिए प्रभु से प्रार्थना की गयी है कि हम इन रोगों से कीटों से लड़ने मे सक्षम हो तथा अपनी प्राण शक्ति के रक्षक बनकर प्राणों को अर्थात जीवन को लंबा करे।

2. हमें रोग के कीटाणु के रूप में आये शत्रु से लड़ना है किन्तु हम तब ही उनसे लड़ पड़ेंगे, जब हम स्वस्थ होंगे, शक्तिशाली होंगे, पुष्ट होंगे। इस लिए मन्त्र में यह जो दूसरी प्रार्थना की गयी है कि हमारे एक एक अंग की शक्ति निरन्तर बुद्धि की ओर ही अग्रसर रहे। जितना हम संघर्ष करें, उतना ही हमारे अंगों की शक्ति भी बटे। इस में कभी न आने पावे। प्रत्येक अंग सशक्त हो।

3. हमें रोगाणुओं से लड़ना है किन्तु यह हम तब ही कर सकते है, जब हम शक्ति का संरक्षण कर सकेंगे। कोई भी सेना शत्रु पर तब तक विजयी नहीं होती, जब तक कि वह शत्रु से शक्ति में कुछ अधिक न हो। यदि शक्ति में शत्रु से कम है तो विजय का प्रश्न ही नहीं होता।

www.thearyasamaj.org

फिर जिस शत्रु से हम लड़ने जा रहे हैं, वह तो हमारे शरीर के अन्दर ही है। अन्दर रहते हुए ही यह हमारा नाश कर रहा है कि ऐसी शक्तियां जिस शरीर में निरन्तर बटती रहती हैं, हे प्रभु !
हमें ऐसा शरीर दो। भाव यह है कि हमारा शरीर इतना पुष्ट हो कि जो रोधक शक्तियां की निरन्तर वृद्धि करता रहे।

4. हमने अपने अन्दर की राक्षसी प्रवृतियों से लड़ाई लड़नी है किन्तु इसमें हमें विजय कैसे मिलेगी? यह विजय पाने के लिए हमारे मन में मजबूती का होना आवश्यक है। जब हमारा मन ही मजबूत नहीं है, हमारा मन ही स्थिर नहीं है तो इस लड़ाई में विजय कैसे पा सकते है? इस लिए मन्त्र कहता है की हम शिव संकल्प वाले हों। अर्थात हम दृढ़ निश्चय वाले हो, जो निर्णय हमने ले लिये है, उसे पूरा करने के लिए अपनी सब शक्ति लगा देवें। यह ही हमारी विजय का एक मेव मार्ग है। इस प्रकार के प्रयत्न से जब हम अपने शत्रुओं का नाश करने में सफल हो जाते हैं तो हमारा जीवन लंबा हो जाता है। स्वस्थ होने से हमारी प्राणशक्ति बट जाती है। जब हमारी प्राण शक्ति बट जाती है तो हमारे शरीर के सब अंग स्वस्थ व दृढ़ हो जाते है। हम अपने शरीर के शब्द को नाम को सार्थक करने वाले बन जाते हैं।

4. जब हम सब प्रकार के सुखों को पा लेते हैं तो हम अपने जीवन को उत्तम बनाने के लिए धन की इच्छा करते हैं और इस मन्त्र के माध्यम से उस पिता से प्रार्थना करते हैं कि सब सुखों को देने वाला वह प्रभु न केवल हमें युद्धों में विजयी कर स्वस्थ ही बनाने वाला है , बल्कि यह हमें सुन्दर भी बनाने वाला है। उस ने हमारे रंग रूप से तो हमें सुन्दर बनाया ही है हमें रस गंध, रूप, स्वस्थ शरीर देकर इस शरीर से भी सुन्दर बनाया है। वह पिता एक अद्‌भुत शिल्पी है, वह जब कुछ बनाने बैठता है तो उस की कारीगरी में, उसकी निर्माण कला में किंचित भी कर्मी नहीं रहती वह पूर्ण हैं और उसकी क्रती भी पूर्ण ही होती है। इस प्रकार हमें उत्तम से उत्तम साधन तथा शक्तियां देने वाला प्रभु हमें दान देने के लिए उत्तम धन भी दे। इस प्रकार पूर्ण स्वस्थ होने के पश्चात हमने उस पिता से धन मांगा है, यह धन भी हमने अपने लिए नहीं दूसरे की सहायता के लए, दुसरों को उन्नत करने के लिए मांगा है।

यहां पर मन्त्र एक अन्य उपदेश कर रहा है। मन्त्र कहता है कि प्राणी उस पिता से धन की कामना कर रहा है किन्तु कुबेर बनने के लिए नहीं। धन का चौकीदार अथवा स्वामी बनने के लिए नहीं बल्कि दूसरों की सहायता के लिए, दान के लिए। **शेष पेज 25 पर**

www.thearyasamaj.org

धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के प्रबल पुरोधाः महर्षि दयानन्द

- डा० व्यासनन्दन शास्त्री वैदिक, मुजफ्फरपुर, बिहार

युगप्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव भारत में उस समय हुआ, जब यहाँ की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक दशाएँ दुर्दशा को प्राप्त हो चुकी थीं। जहाँ एक ओर भारत माता विदेशी दासता से जकड़ी सदियों से कराह रही थी, तो दूसरी ओर बाल विवाह, वृद्धविवाह, बहुविवाह, अनमेल विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियों की शिकार बनी लाखों बाल-विधवाएँ करूण-क्रन्दन कर रही थी। चतुर्दिक् अन्याय, अत्याचार, पापाचार व भ्रष्टाचार के कारण त्रस्त जनता आर्तकार कर रही थी। अवैदिक मतों के अतिरिक्त कुकुरमुतों की भाँति अनेक मत-मतान्तरों ने धर्म स्वरूप को विकृत कर दिया था। अवतारवाद, बहु देवतावाद, जातिवाद, मूर्तिवाद, छुआछूत, ऊँच-नीच, जन्मना वर्ण-व्यवस्था, मृतक श्राद्ध आदि अनेकविध मिथ्या मान्यताएँ समाज में व्याप्त थी। श्रीमद् भगवद् गीता ने कहा था- ईश्वरः सर्वभूतानां दृद्देशेऽर्जून तिष्ठति (17.61), परन्तु भक्तजनों ने उन्हें अपने हृदय-मन्दिरों से निकालकर गली-कूचों में बने ईंट-पत्थरों के मन्दिरों में कैद कर दिया था। वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति'' की मनमानी व्याख्या करके ईश्वर और यज्ञ के नाम पर निरीह पशुओं और कभी-कभी मानव-शिशुओं की बलि देकर तथाकथित भक्त जन खुशी में पागल होकर नाचते-कूदते थे। लोगों को भूत-प्रेत की लीला बताकर जहाँ समाज का एक वर्ग अपनी जेब गर्म करता था, तो दूसरी ओर रोगी की समुचित चिकित्सा से वंचित कर मौत के मुँह में धकेल देता था। तीर्थस्थान व्यभिचार के अड्डे बने हुए थे। ''स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्'' का मिथ्या प्रचार करके देश की गाधी से अधिक आबादी को शिक्षा से वंचित कर दिया था। इसके अतिरिक्त भारत को 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' दासता की बेड़ियों में जकड़े रखने के लिए बोर्ड ऑफ एजुकेशन के अध्यक्ष लॉर्ड मैकाले द्वारा निर्धारित शिक्षा-नीति के अनुसार खोले गए स्कूलों और कॉलेजों के लिए जो पाठ्यक्रम नियत किया गया था वह मेड इन इंग्लैण्ड, बाइ इंग्लैण्ड एण्ड फॉर इंग्लैण्ड था। उसका एकमात्र प्रयोजन पाश्चात्य विचार वाले ऐसे व्यक्ति तैयार करना था जो तन से भले ही काले हों, परन्तु मन से गोरे अर्थात् अंग्रेज बन जाए। उस शिक्षा नीति के ढाँचे में ढलकर जो भी निकले, डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में- दे वेयर मोर इंग्लिश दैम्सेल्वज् (ईंडियन फिलॉसफी, वाल्यूम)।

ऐसे विषम समय में सन् 1824 में दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात के काठियावाड प्रदेश

www.thearyasamaj.org

की छोटी-सी रियासत मोरवी के ग्राम टंकारा में हुआ। इनके बचपन का नाम मूलशंकर था। उनके पिता करसन जी तिवारी औदीच्य ब्राह्मण थे। माता अमृताबाई धर्मपरायणा नारी थी। इनका परिवार कट्टर शिवभक्त था। मूलशंकर अपने पिता की सबसे बड़ी सन्तान थे।

बचपन में मूलशंकर के जीवन में एक-दो घटनाएँ (शिवरात्रि-घटना तथा चाचा-भगिनी की मृत्यु) ऐसी घट गयी, जिनके कारण उनका भावी जीवन एक नया मोड़ ले सका। एक दिन में अपने गृह परिवार तथा माता-पिता को त्यागकर वैराग्य पथ के पथिक बन गए। कुछ काल तक शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी के रूप में गुजरात में भ्रमण करने के बाद, उन्होंने स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास की दीक्षा ली। कुछ समय तक वे योग-साधना तथा शास्त्रों के अध्ययन में लगे रहे। उनका अनुमान था कि हिमालय की चोटियों पर अवश्य ही उच्च कोटि के योग-साधक तथा अध्यात्म-विद्या के ज्ञाता साधुगण रहते होंगे। जिज्ञासु दयानन्द इन्हीं योग साधुओं की तलाश में उत्तराखण्ड के दुर्गम वन-पर्वतों में पर्याप्त समय तक भ्रमण करते रहे, किन्तु, उन्हें इच्छित सफलता नहीं मिली। इसके विपरीत उन्होंने देखा कि तीर्थों, मन्दिरों, देवस्थानों आदि में पाखण्ड और आडंबर का बोल बोला है। तब वे हिमालय की चोटियों से उत्तर आये और नर्मदा के तटवर्ती प्रदेश में घूमते रहे। यहीं पर उन्हें मथुरा में निवास करने वाले एक नेत्रहीन संन्यासी का परिचय प्राप्त हुआ, जो संस्कृत-व्याकरणविद्या के प्रकांड पण्डित थे।

स्वामी दयानन्द 1860 में सत्य की खोज में मथुरा आए। लगभग ढाई वर्षों तक प्रज्ञाचक्षु (नेत्रहीन) संन्यासी स्वामी बिरजानन्द जी दण्डी के शिष्य के रूप में रहे। उनसे व्याकरण, निरूक्त, वेदान्त आदि आर्य शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। जब उनका अध्ययन समाप्त हुआ, तो गुरू विरजानन्द उनसे गुरूदक्षिणा में प्रतिज्ञा कराते हुए वचन लिया कि वे अपना शेष जीवन वेद-विद्या का प्रचार करने, ऋषि-ग्रन्थों के पठन-पाठन, साम्प्रदायिकता के उन्मूलन तथा देशवासियों में राष्ट्रभक्ति के भावों का प्रचार करने में लगायेंगे। स्वामी दयानन्द ने मौन भाव से गुरू के आदेश को स्वीकार किया और कार्य-क्षेत्र में उत्तर पड़े।

प्रारंभ में स्वामी जी ने गंगा के तटवर्ती प्रान्तों में भ्रमण करके लोगों को वैदिक धर्म के मूलभूत तत्वों की शिक्षा दी। पाखण्ड-निवारण हेतु हरिद्वार के कुंभ मेले में पाखण्ड खण्डिनी पताका फहराई। सन्ध्या, अग्निहोत्र, गायत्री-जप आदि वैदिक उपासना प्रणाली का महत्त्व बताया। वेद विरूद्ध-मूर्तिपूजा, अवतारवाद, मृतक श्राद्ध आदि से अलग रहने का उपेदश दिया। उन्होंने काशी,

www.thearyasamaj.org

फर्रूखाबाद, कानपुर आदि अनेक नगरों में पुराणपंथी पंडितों से शास्त्रार्थ किये। मूर्तिपूजा के स्थान पर वैदिक यज्ञादि (पञ्चमहायज्ञ) को प्रतिष्ठापित भी किया।

इस तरह स्वामी दयानन्द बिहार के दानापुर, जमालपुर, भागलपुर आदि शहरों में भ्रमण करते हुए सन् 1872 में दिसम्बर माह मे ब्रह्मसमाज के नेता महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर तथा अन्य प्रबुद्ध बंगालियों के निमन्त्रण पर कोलकाता गए। इसी क्रम में वहाँ उनकी भेंट बंगाल के सुधारकों केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस आदि सन्तों और प्रतिष्ठित महात्माओं से हुई। धर्म, समाज, राष्ट्र की व्यापक सेवा के लिये क्या कुछ किया जाना चाहिये- यह सब सोचने का उन्हें अवसर भी मिला।

तदनन्तर राष्ट्र की समस्त समस्याओं के सम्यक् समाधान हेतु सन् 1875 में मुंबई में माणिक जी की वाटिका में विश्व-प्रसिद्ध आन्दोलन की नींव रखी जो 'आर्यसमाज' के नाम से विख्यात हुआ। इस प्रबल आन्दोलन के द्वारा वे देश, समाज तथा मानवता के हितार्थ जुट गए। उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से इस देश की समस्याओं पर चिंतन किया। तत्पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि देश, जाति, समाज की दुर्दशा का मूलकारण वेद-विद्या के प्रचार के अभाव में देश में व्याप्त अविद्यान्धकार है। इसके निवारणार्थ उन्होंने घोषणा की-

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

तत्कालीन वेद के नाम पर फैली मिथ्या धारणाओं का जोरदार खण्डन करते हुए जहाँ दयानन्द ने" यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः" (यजु० 26/2) इत्यादि वेदमन्त्रों के आधार पर मनुष्य-मात्र को वेद के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने का अधिकार प्रदान किया। दयानन्द के मत में जैसे ईश्वर की सृष्टि जल, वायु आदि पदार्थ सबके लिये हैं, वैसे ही उसका (ईश्वर का) ज्ञान 'वेद' सबके लिए है। यह किसी वर्ग-विशेष की धरोहर नहीं है। इस प्रसंग में योगी श्री अरविन्द के विचार द्रष्टव्य हैं- "समय ने जिन द्वारों को बंद कर रखा था, उनकी चाबियों को दयानन्द ने ढूँढ़ निकाला और सदियों से बन्द पड़े वेद के दरवाजे को सबके लिये एक झटके में ही तोड़ फेंका" (वैदिक मैंगजीन, लाहौर, नवम्बर 1916)।

स्वामी दयानन्द के अनुसार मंत्र संहिताओं (ऋक्, यजुः, साम और अथर्व) को छोड़कर सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय परतःप्रमाण हैं, केवल ये चार संहितायें (चारों वेद) ही स्वतः प्रमाण हैं। वेदों के सभी शब्दों को उन्होंने यौगिक या योगरूढ़ माना है। कोई भी शब्द रूढ़ या यदृच्छा

www.thearyasamaj.org

रूप नहीं है। प्राचीन ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट त्रिविध प्रक्रिया को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने वेदमन्त्रों का व्यावहारिक और वैज्ञानिक अर्थ करके वेदों को सर्वजनोपयोगी रूप में प्रस्तुत किया। हिन्दी में वेदों का भाष्यकर उन्होंने महान् जन कल्याण किया। दयानन्द के वेदभाष्य को लक्ष्य करके योगी श्री अरविन्द ने पुनः कहा- "दयानन्द की धारणा में वेद में धर्म और विज्ञान दोनों की सच्चाइयाँ पायी जाती हैं, कोई हास्यास्पद या कल्पनामूलक बात नहीं है। मैं इसके साथ अपनी यह धारणा भी जोड़ना चाहता हूँ कि वेदों में विज्ञान की वे सच्चाइयाँ भी हैं, जिन्हें आधुनिक विज्ञान अभी तक नहीं जान पाया है। ऐसी अवस्था में दयानन्द ने वैदिक ज्ञान की गहराई के सम्बन्ध में अतिश्योक्ति से नहीं अपितु न्यूनोक्ति से ही काम लिया है। फ्रांस के महान् लेखक रोम्याँ रोला ने लिखा है- "शारीरिक बल में वह हरक्यूलीस के समान शक्तिशाली था जो सत्य के विपरीत हर प्रकार के विचार के विरूद्ध गरजता था। अपने प्रयास में वह इतना सफल हुआ कि पाँच वर्ष के भीतर सारा उत्तर भारत पूरी तरह बदल गया। संस्कृत और वेदों के ज्ञान में शंकराचार्य के बाद दयानन्द के समान दूसरा नहीं हुआ।"

राष्ट्र की उन्नति के लिये पुरुषार्थ करना भी दयानन्द की दृष्टि में परम धर्म था। उनमें देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी थी। इसके लिए उनकी कुछ पंक्तियाँ ही पर्याप्त होंगी- "यह आर्यावर्त्त ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा देश नहीं है। पारसमणि पत्थर का नाम सुना जाता है, यह बात तो मिथ्या है, परन्तु यह आर्यावर्त ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूपी विदेशी छूते ही स्वर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं। (सत्यार्थप्रकाश, 11वाँ समुल्लास) ऐसे स्वेदश के लिए गौरवगान करने वाले ऋषि भला भारत की परततंत्रता को देखकर मूकदर्शक बनकर कैसे रहते? उन्होंने पराधीनता के पाशों में बंधे देशवासियों को राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाया तथा उन्हें 'स्वधर्म, स्वभाषा, 'स्व-संस्कृति' तथा 'स्वदेश-प्रेम' की प्रेरणा दी।

दयानन्द ही पहले भारतीय थे, जिन्होंने स्पष्ट उद्घोषणा करते हुए कहा- "चाहे कोई कितना ही करे, किन्तु स्वदेशी राज्य सर्वोपरि उत्तम होता है।' अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित, अपने-परायें का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।"

इसके साथ ही दयानन्द इस शताब्दी के पहले भारतीय थे, जिन्होंने अंग्रेजों के शासन होने पर भी हिन्दी को राष्ट्रभाषा हमें राष्ट्रीय संस्कृति से जोड़ी है। स्वयं गुजराती होते हुए भी स्वामी जी ने अधिकांश व्याख्यान' हिन्दी में दिये और अपने

www.thearyasamaj.org

ग्रन्थ भी हिन्दी में लिखे। वे परम्परा और प्रगति को साथ लेकर चलने वाले महापुरूष थें महर्षि ने हिन्दी के लिए 'आर्य भाषा' शब्द का प्रयोग किया। राष्ट्र भक्ति के इन्हीं गुणों से प्रभावित हो अनन्तशयन आयंगर ने उन्हें 'राष्ट्र पितामह' कहा है।

ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी महर्षि दयानन्द ने देश धर्म-जाति-संस्कृति की रक्षा हेतु 17 बार जहर पीये और दुनियावालों को अमृत पिलाया। मात्र 59 वर्ष की आयु में सन् 1883 में उन्होंने अजमेर की भिनायकोठी में अपने पंचभौतिक शरीर का परित्याग किया और निर्वाण को प्राप्त हुए। निर्वाण-तिथि यही दीपावली है। तभी से हम देशवासी आर्यजन उनके सम्मानार्थ दीपावली को 'ऋषि-निर्माण-दिवस' के रूप में मनाते हैं। और उनके बताए वेदोक्त धर्म पर चलकर अज्ञान रूपी अन्धकार मिटाकर ज्ञान रूप प्रकाश फैलाने का व्रत लेते हैं।

वेद प्रचार महोत्सव

आर्य समाज कल्याणगंज बंगराहा का वार्षिकोत्सव दिनांक 21.02.2014 से 23.02.2014 तक मनाया जा रहा है जिसमें स्वस्ति महायज्ञ का आयोजन भी किया जा रहा है। अतः समस्त आर्य बन्धुओं से निवेदन है कि इस कार्यक्रम में भाग लेकर धर्म लाभ उठाये ।

मंत्री

पेज 20 का शेष...

कितना सुन्दर उपेदश दे रहा है यह मन्त्र। हम धन तो मांगे किन्तु दूसरों की सहायता के लिए। हम धन अपने हित के लिए नहीं मांग रहे। हमने धन इसलिए नहीं मांगा की इससे हम विलासिला की सामग्री प्राप्त कर नशे में धुत हो आलसी बनकर लेटे रहें, कर्म हीन हो जावें, पराश्रित हो जावें। इस प्रकार हम निरंतर मत्यु के पाश में जकड़ते चलें जावेंगे। नहीं हमारा प्रभु हमारा पिता भी है। वह हमें ऐसा धन कभी भी नहीं देगा, जिस से हम अपने आप को नष्ट कर दें। वह तो वह धन ऐसा ही देगा जिस से हमारा स्वास्थ्य उत्तम हो तथा हमारे यश व कीर्ति बढ़े।

6. प्रभु कृपालु है, प्रभु दयालु है। वह प्रभु हम पर कृपा करके, हम पर दया करके, हमारे शरीर में जो भी अल्पग्यता है, जो भी कमियां है, जो भी त्रुटियां है, अपनी शक्ति से उन सब को दूर कर दे। हमारी सब न्यूनताओं को अपनी कृपा से दूर कर दे। हमारे मलों को धो कर, नष्ट कर दें, उनको शुद्ध करदे। इस प्रकार जब हमारे अन्दर किसी प्रकार का मालिन्य नहीं रहेगा तो हम स्वयं ही सुन्दर से भी कहीं अधिक सुन्दर हो जावेंगे। यहां एक बात समझने की है कि प्रभु उसकी ही सहायता करता है, जो अपनी सहायता स्वयं करता हैं अतः जो इस प्रकार का पुरूषार्थ करता है, मेहनत करता है, एसी सुन्दरता प्रभु उसे ही देता है। अन्य किसी को नहीं।

www.thearyasamaj.org

सत्य न्याय एवं वेद के अग्रही स्वामी दयानन्द सरस्वती

- प्रो. उमाकान्त उपाध्याय, कोलकाता

स्वामी दयानंद का जन्म फाल्गुनी कृष्णा दशमी में 1889 वि., सन 1824 ई. को सौराष्ट्र (गुजरात) टंकारा, मौरवी में हुआ था. इनके पिताजी कर्षणजी तिवारी औदीच्य कुल के सामवेदी ब्राह्मण थे। वे निष्ठावान शिव भगवान् के भक्त थे। उन्होंने अपने पुत्र का नाम "मूलशंकर" रखा था। सो स्वामी दयानंद का जन्म से नाम मूलशंकर था। सामवेदी ब्राह्मण होने पर भी पिताजी ने मूलशंकर को यजुर्वेद की रुद्राध्यायी कंठस्थ करा दी थी। कर्षण जी अपने पुत्र मूलशंकर को भगवान शिवजी की कहानियाँ बड़ी निष्ठा से सुनाया करते थे। पिता जी के आग्रह पर मूलशंकर ने 14 वर्ष की आयु में पूर्ण श्रद्धा भक्ति के साथ शिवरात्रि का व्रत किया। दिनभर भगवान् शिव की कथा वार्ता होती रही और मूलशंकर ने दृढ़ता से उपवास किया था। सायंकाल पिताजी मूलशंकर के साथ लें, शिव के पूजन की सामग्री लेकर गाँव के बाहर मंदिर में शिवरात्रि का पूजन करने के लिए गये। मूलशंकर के पिताजी बड़े धनाढ्य संपन्न ब्राह्मण थे। शिवरात्रि में शिव की पिंडी का पूजन चारों पहर में चार बार होता है। रात्रि जागरण का विशेष फलदायक महत्व है। प्रथम प्रहर का पूजन बड़े ठाट बाट घटाटोप से हुआ। दूसरे प्रहर का पूजन भी हो गया। तीसरे प्रहर में निद्रा देवी ने सबको दबा लिया। मूलशंकर के पिताजी और मंदिर के पुजारी जी, सभी निद्रा के वश में हो गए, सिर्फ मूलशंकर पूरी श्रद्धा भक्ति से जागते रहे। मंदिर में पूर्ण नीरवता, शांति छाई हुयी थी। इतने में मंदिर के इधर-उधर से दो-चार चूहे पिंडी पर अर्पित सामग्री को खाने के लिए शिव की पिण्डी पर उछल-कूद करने लगे। मूलशंकर के हृदय में प्रभु-कृपा से सत्य का प्रकाश हुआ। उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि यह पिण्डी कल्याणकारी भगवान्, शिव, कैलाश, तांडवकारी भगवान् शंकर नहीं हो सकती। यह सत्य के प्रति प्रथम आग्रह था। उन्होंने पिताजी को जगाया किन्तु पिताजी और पुजारी मूलशंकर को संतुष्ट नहीं कर सके और सत्य के प्रति यह परम दुर्दान्त आग्रह स्वामी दयानन्द से संपूर्ण जीवन में बड़ी दृढ़ता से बना रहा और स्वामी दयानन्द ने यावत् जीवन सत्य का प्रचार किया और किन्हीं भी परिस्थितियों में सत्य के साथ कोई समझौता नहीं किया।

स्वामी दयानन्द ने अपने युगान्तरकारी कालजयी ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" की भूमिका

www.thearyasamaj.org

में लिखा है। ''मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जाननेहारा है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य पर झुका जाता है'' स्वामीजी ने वही भूमिका में पुनः लिखा है- ''विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम हैं कि उपेदश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर देना, पश्चात् मनुष्य लोग स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनंद में रहे,'' वहीं पुनः लिखते हैं- ''यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़कर सर्वतंत्र सिद्धांत अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे के विरूद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्ते बर्तावें तो जगत का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेकविधि दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। ''यह उद्धरण किसी समीक्षा या व्याख्या की आकांक्षा नहीं करते।

स्वामी दयानन्द सत्य के प्रति इतने आग्रहवान थे कि उन्होंने आर्य समाज का चौथा नियम यह बनाया कि ''सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।'' स्वामीजी ने पुनः पांचवे नियम में यह व्यवस्था दी है कि ''सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।'' सत्य और न्याय एक-दूसरे के साथी हैं, जहाँ सत्य का पालन होगा वहां न्याय स्वतः होता रहेगा। जिस युग में स्वामीजी ने अपना प्रचार कार्य आरम्भ किया उस समय कई प्रकार के अन्याय समाज में परिवारों में प्रचलित हो गए थे। सामाजिक रूप में छुआ-छूत भयानक रूप से चल रहा था। अछूतों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। परिवारों में स्त्रियों की स्थिति बहुत दयनीय हो गयी थी। उनके साथ प्रायः दासियों जैसा व्यवहार होता था। स्त्रियाँ सब प्रकार से तिरस्कृत और पैर की जूतियाँ समझीं जाती थी। स्त्री और शूद्रों को पढ़ने का अधिकार नहीं था। स्वामी दयानन्द ने बड़े क्षोभ और उग्रता से इस अन्याय का विरोध किया। लड़कियों के लिए पाठशाला की व्यवस्था की और अछूतों के लियें छुआ-छूत के भेद भाव दूर कर दिए और उनके लिए भी पढ़ने की व्यवस्था की।

उस युग में बाल-विवाह बहुत प्रचलित था। आठ-दस वर्ष की लड़कियां भी बूढ़ों और अधेड़ों को ब्याह दी जाती थी। विधवाओं की संख्या बहुत अधिक थी और विधवा-विवाह धर्म-विरूद्ध माना जाता था। ये बाल-विधवाएँ

www.thearyasamaj.org

या तो वेश्या बन जाती थीं या देवदासियां बन जाती थी। स्वामी दयानन्द ने इन सभी अन्यायों का डटकर विरोध किया। आर्य समाज ने अपने मंदिरों से छुआ-छूत को हटाया और बाल-विवाह के विरुद्ध सामाजिक आन्दोलन किया। हिन्दू समाज में विधवा विवाह आरम्भ हो गया। प्रत्येक आर्य समाज मंदिर में कन्याओं को पढ़ाने के लिए पाठशालाएं खुल गयी। अछूतों को आर्य समाज के विद्यालयों और छात्रावासों में बिना किसी रोक-टोक के प्रवेश मिलने लगा। आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं का सामाजिक बहिष्कार का दण्ड भी भोगना पड़ा किन्तु स्वामी दयानन्द की शिक्षाओं के फलस्वरूप ये सामाजिक आन्दोलन बढ़ता ही गया और छुआ-छूत मिटने लगा तथा स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह सामाजिक अधिकार मिलने लगे। उन्हें सब प्रकार से उन्नति का अवसर सुलभ हो गया।

संस्कृत और हिंदी की शिक्षा की बड़ी उपेक्षा हो रही थी। संपन्न लोग उर्दू और फारसी पढ़ रहे थे। स्वामी दयानन्द ने अपने संगठन में सारे कामों को हिंदी में करने का अनिवार्य नियम बना दिया।

स्वामी दयानन्द के इस प्रकार का परिणाम यह हुआ कि अछूत कुलों के विद्यार्थी भी बड़े-बड़े विद्वान, आचार्य, वेदपाठी, अध्यापक बनाने लगे और बिना किसी भेद-भाव के पण्डितों की मण्डली में प्रतिष्ठित होने लगे। स्त्रियाँ भी संस्कृत और वेद की उच्चकोटि की विदुषी बनने लगीं और पुरुषों के सामान ही वेदों की पण्डिता भी होने लगी। इधर छुआ-छूत को दूर करने का प्रयास महात्मा गाँधी ने भी किया और राष्ट्र की आत्मघाती छुआ-छूत की प्रथा समाप्त होने लगी। छूत, सवर्ण-असवर्ण, सब बिना किसी भेदभाव के चाय, नमकीन, समोसे, मिठाई आदि खाने-पीने लगे। इसी बीच मण्डल, कमण्डल, सच्चर आदि कमीशनों, कमेटियों की रिपोर्टों ने जातिगत भावना को भड़का दिया। राष्ट्र की एकता की इस आत्मघाती नीति को राजनीतिक दलों ने भी अपने निहित राजनीतिक स्वार्थों के कारण खूब बढ़ावा दिया। अब तो ऐसा लगने लगा है कि अछूत जनजाति, अनुसूचित जाति, पिछड़ा वर्ग, सभी को राष्ट्र की एकता के विभाजन का राष्ट्रघाती पुरस्कार मिलने लगा है और स्वार्थी राजनीति इन्हें चिरस्थायी करने पर तुली हुई हैं, स्वामी दयानन्द और महात्मा गाँधी की राष्ट्र-हितैषी छुआ-छूत को दूर करने की नीति को ही राजनीति ने निर्ममता से समाप्त कर दिया है। **शेष अगले अंक में...**

www.thearyasamaj.org

जो बोले सो अभय
महर्षि दयानन्द की जय

वैदिक धर्म की जय
सत्यार्थ प्रकाश अमर रहे।

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली के मार्ग दर्शन में

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल्स बिहार के पावन पुरूषार्थ से बिहार की धरती पर पहली बार

भव्य सत्यार्थ प्रकाश महोत्सव एवं 51 कुण्डीय विश्व कल्याण महायज्ञ

दिनांक : 26 दिसम्बर से 28 दिसम्बर 2013 तक

स्थान : डी.एस.डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, आरा (भोजपुर)

उद्घाटन कर्ता एवं मुख्य अतिथि

श्रीयुत् एस.के. शर्मा जी, महामंत्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

यज्ञ के ब्रह्मा

आचार्या बहन लक्ष्मी भारती (हरियाणा)

मुख्य वक्ता

- आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय, नई दिल्ली (अन्तर्राष्ट्रीय प्रवक्ता एवं वेदों के प्रकाण्ड विद्वान)
- डॉ. सारस्वत मोहन मनीषी, नई दिल्ली (राष्ट्रीय कवि एवं क्रान्तिकारी वक्ता)

भजनोपदेश

• श्री धर्म प्रकाश शास्त्री (जमशेदपुर) • श्री मनोज शास्त्री (पटना) • पंडित दयानन्द सत्यार्थी (समस्तीपुर)

भव्य शोभा यात्रा
26 दिसम्बर को अपराह्न 2 बजे से
महाराजा कॉलेज आरा के प्रांगण से

कार्यक्रम विवरण :

उद्घाटन
26 दिसम्बर 2013, प्रातः 11 बजे

यज्ञ हवन
प्रातः 9 बजे से 10.30 बजे तक

भजन प्रवचन एवं शंका समाधान
प्रातः 11 बजे से अपराह्न 2 बजे तक एवं संध्या 5 बजे से रात्रि 9 बजे तक

समापन समारोह
28 दिसम्बर को अपराह्न 2.30 बजे से 4 बजे तक

(सत्यार्थ प्रकाश महर्षि दयानन्द का अमर ग्रन्थ है, यह आर्य समाज का प्राण है इसके प्रचार से समाज में नई चेतना का संचार होगा। अज्ञानता से मुक्ति मिलेगी। आइये, वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें और पढ़ायें।)

आयोजक

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा बिहार

डा. यू.एस. प्रसाद	... कुलकर्णी	एस.के. झा	जगत...	के.के. सिन्हा
प्रधान	उपप्रधान	उपप्रधान	मंत्री	कोषाध्यक्ष

www.thearyasamaj.org

आर्य समाज दानापुर का वैदिक धर्म महोत्सव सम्पन्न

आर्य समाज दानापुर का 135वाँ वार्षिकोत्सव डी.ए.वी. इन्टर विद्यालय में 7 से 10 अक्टूबर 2013 तक धूम-धाम से मनाया गया। इस अवसर पर 1 अक्टूबर से 10 अक्टूबर तक 10 दिवसीय यजुर्वेद ब्रह्म नारायण महायज्ञ आयोजित् किया गया। जिसमें यज्ञ के ब्रह्म पं० हरिशंकर अग्निहोत्री जी आगरा को बनाया गया। अग्निहोत्री जी दस दिनों तक यज्ञ को महिमा मण्डित करते रहे वहीं सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक पं० कुलदीप विद्यार्थी बिजनौर एवं सत्यप्रकाश आर्य व्यापुर के भजन होते रहे। इस दस दिवसीय वेद कथा को श्रोताओं ने मुग्ध होकर सुना।

यज्ञ, योग, भजन, प्रवचन के इस अद्‌भुत संगम में 7 अक्टूबर से विशेष आयोजन था जिसमें दोपहर नगर कीर्तन में अनेक गणमान्य लोगों और आर्य अनाथालय के बच्चे ने भाग लेकर ऋषि विचार को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। सायंकालीन सत्र में वेद सम्मेलन पर विद्वानों के व्याख्यान हुए, इस अवसर पर महिला सम्मेलन, पटना जिला आर्य सम्मेलन, सामाजिक क्रांति सम्मेलन, आर्यवीर एवं आर्य कुमार सम्मेलन शिक्षा सम्मेलन, राष्ट्र रक्षा सम्मेलन के अलावा शंका समाधान का भी आयोजन हुआ।

इस धार्मिक अनुष्ठान में स्वामी मोक्षानन्द हिमाचल, स्वामी शिवानन्द, बुलन्द शहर, आचार्य सोमदेव शास्त्री, मुम्बई, मुख्य वक्ता के रूप में आमंत्रित थे तो पं० कुलदीप आर्य बिजनौर, सुश्री धर्म रक्षिता बेगुसराय पं० सत्यप्रकाश आर्य भजनोपदेश के लिये आमंत्रित थे।

इस कार्यक्रम में श्री गंगा प्रसाद प्रधान, श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता मंत्री, श्री सत्यदेव गुप्ता, कोषाध्यक्ष, सभी विहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा पटना के अधिकारी ने भी भाग लेकर इस कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई।

सभी पाठकों को सूचित किया जाता है कि पत्रिका की निरंतरता के लिये सदस्यता शुल्क जल्द से जल्द भेजने की कृपा करेंगे।

www.thearyasamaj.org

ओ३म्

भव्य सत्यार्थ प्रकाश सम्मेलन सह राष्ट्र रक्षा महायज्ञ सम्पन्न

आर्य समाज नेमदारगंज (नवादा-बिहार) द्वारा दिनांक 21 से 24 नवम्बर 2013 को डी.ए.वी. जोन-2, गया एवं मगध प्रमण्डलीय आर्य सभा के संयुक्त तत्वावधान में हर्षोल्लास के साथ क्षेत्रीय जनता के सहयोग एवं आगत अतिथियों, विद्वानों के अथक प्रसास से सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ जिसमें यज्ञ के ब्रह्मा आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान मुम्बई के डॉक्टर श्री सोमदेव जी शास्त्री, वैदिक प्रवक्ता पंडित श्री वेद प्रकाश श्रोत्रिय (दिल्ली), पं० श्री दिनेशदत्त जी भजनोपदेशक (दिल्ली) बहन रंजना तिवारी (कानपुर), पं० श्री दयानन्द सत्यार्थी (समस्तीपुर), पं० श्री अमरदेव जी भजनीक ने अपने भजन प्रवचन से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास के कार्यकारी अध्यक्ष श्री अशोक आर्य (उदयपुर-राजस्थान) सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के उपमन्त्री श्री विनय आर्य जी बिहार राज्य आर्य प्रतिनिध सभा के प्रधान माननीय श्री गंगा प्रसाद जी, मंत्री श्री रमेन्द्र गुप्ता, कोषाध्यक्ष श्री सत्यदेव गुप्ता, आर्य प्रतिनिधि उपसभा बिहार के प्रधान श्री यू.एस. प्रसाद निदेशक डी.ए.वी. जोन-2 गया तथा डी.ए.वी के विभिन्न स्कूलों के प्राचार्यगण, कानपुर राजार्य सभा के श्री रघुराज जी शस्त्री स्थानीय नवादा जिला के सम्माननीय चिकित्सक डॉ. मनोज कुमार MBBS एवं डॉ. मिसेज पिंकी बरनवाल (गायनोकॉलोजिस्ट) मुख्य अतिथि रहे। प्रमण्डलीय सभा के सभी पदाधिकारीगण, डी.ए.वी. के धर्माधिकारी, नवादा जिला आर्य सभा के अधिकारियों क्षेत्रीय विशिष्ठ गणमान्य सज्जनों, बिहार के 29 जिलों से पधारे प्रतिनिधिगण, नेपाल देश से आर्य भद्र पुरूषों एवं महिलाओं का सम्मान पुष्पमाला, शाल एवं सत्यार्थ प्रकाश से सम्मानित किया गया। भोजनालय में सम्माननीय अतिथियों की संख्या छः सौ प्रति दिवस से अधिक आंकी गयी। 29 नवम्बर को शोभायात्रा में जयघोष करते भिन्न-भिन्न संस्थाओं, आर्य समाजों, शिक्षण संस्थाओं के प्रतिनिधिगण, विद्यार्थियों, गणमान्य सज्जनों की सहभागिता तथा घरों की छतों से होती पुष्प बृष्टि की बौछार ने सबको आकर्षित किया।

पूरे गाँव में फैले ध्वनि विस्तारक तन्तु एवं प्रकाश की व्यवस्था ने लोगों को घरों से निकले एवं सजे पण्डाल की ओर आकृष्ट

www.thearyasamaj.org

किया। पूरे गाँव में फैले ध्वनि विस्तारक तन्तु एवं प्रकाश की व्यवस्था ने लोगों को घरों से निकलने एवं सजे पण्डाल की ओर आकृष्ट किया। श्री संजय सत्यार्थी के कुशल मंच संचालन, तबला पर श्री नित्यानन्द शास्त्री (डी.ए.वी.), श्री उदय कुमार-नाल एवं श्री राजकुमार के आर्गन पर की गयी संगति, श्री लक्ष्मी नारायण आर्य, प्रवीण रंजन, उदय पेन्टर, हर्षवर्द्धन आर्य, सन्तशरण आर्य, सुनील कुमार, अश्वनी कुमार, सागर कुमार, रणजीत कुमार, [illegible] कुमार, दामोदर प्रसाद आर्य, प्रमोद गोस्वामी, मनोज कुमार आनन्द, वेद प्रकाश, [illegible]प्रसाद, [illegible] कुमार, मुकेश कुमार आदि [illegible] कार्यशैली ने कार्यक्रम में चार चाँद [illegible] प्रसाद आर्य 'मरूत' ने अपनी [illegible] का संग्रह आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट [illegible] से प्रकाशित 'दयानन्द सन्देश' में मई [illegible] में प्रकाशित विशेषांक श्री दिनेशदत्त जी को [illegible] विगलित वाणी के साथ सादर भेंट में दी।

श्री संजय साव कोलकाता, श्री राजेश कुमार, श्री उदय यादव नेमदारगंज ने आर्थिक सम्बल देकर डी.ए.वी. की तरह सहयोग प्रदान किया। श्री गजेन्द्र प्रसाद ने विद्वान अतिथियों को आवास एवं भोजन सत्कार से तृप्त किया। सभी अतिथियों की आवास व्यवस्था के लिये अपना बड़ा हॉल देकर चिन्ता मुक्त कर दिया।

श्री हर्षवर्द्धन आर्य ने सभी आगत् अतिथियों को परिचय पटिका देकर सम्मेलन की शोभा बढ़ाई। राजार्य सभा कानपुर से आये श्री रघुराज आर्य जी की अध्यक्षता में राजनीति की पृष्ठभूमि के लिये जागृति से कार्यकर्त्ताओं में सजगता उत्पन्न की गयी। सत्यार्थ प्रकाश पर गोष्ठी श्री अशोक आर्य जी कार्यकारी अध्यक्ष सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर की अध्यक्षता में लोगों में शुद्ध संस्करण के लिये पहल करने की तत्परता उत्पन्न की गई। इस कार्यक्रम से आर्य समाज की शिथिलता से उत्पन्न खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने की ललक तथा संगठनात्मक ढांचे को सुदृढ़ करने का प्रयास एवं सजगता का संचार किया गया।

आर्य समाज, जोगबनी की कार्यकारिणी का गठन

संरक्षक - श्री जगदीश प्रसाद
प्रधान - श्री सीताराम अग्रवाल
उप प्रधान- श्री रामखेलावन आर्य
मंत्री- श्री मदन आर्य
उपमंत्री- श्री विरेन्द्र गुप्ता
कोषाध्यक्ष- श्री बजरंग गांधी
पुस्तकाध्यक्ष- श्री प्रमोद आर्य
प्रचार मंत्री- श्री दीपक प्रमाणिक
उप प्रचार मंत्री- श्री संतोष साह
मीडिया प्रभारी- श्री कृतनारायण आर्य

www.thearyasamaj.org

जन्म के आधार पर न होकर कर्म के आधार पर होनी चाहिये-सत्यार्थ प्रकाश का यही एक विचार इतना क्रांतिकारी है कि इसके क्रिया में आने से हमारी 90% समस्यायें हल हो जाती है। इस ग्रंथ में हर पहलू पर ध्यान दिया गया है। इसे चौदह सम्मुल्लासों में वर्णित किया गया है। आईये! हम यह जानने का प्रयास करें कि कौन-सा सम्मुल्लास में क्या है।

1. प्रथम सम्मुल्लास- इसमें ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या है। परमेश्वर के प्रमुख गौणिक नामों के साथ प्रधान एवं निजनाम 'ओ३म्' को ही सर्वोत्तम माना गया है। इस सम्मुल्लास को पढ़ने से ईश्वर के प्रतिभ्रांति मिट जाती है और सच्चे ईश्वर की जानकारी हो जाती है।
2. द्वितीय सम्मुल्लास- इसमें संतानों की शिक्षा के बारे में बतलाया गया है, साथ ही माता-पिता और आचार्य के महत्व को समझाया गया है। माता ही बच्चे का निर्माता है, उस पर बहुत ही सुन्दर विवेचन है।
3. तृतीय सम्मुल्लास- इसमें ब्रह्मचर्य, पठन-पाठन व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रंथों के नाम, पढ़ने-पढ़ाने की रीति को विस्तार से समझाया गया है। यज्ञ की महता और सार्थकता तथा मानवमात्र को वेद पढ़ने का अधिकार प्रमाण सहित दिया गया है।
4. चतुर्थ सम्मुल्लास- इसमें विवाह और गृहाश्रम का सुन्दर चित्रण है। विवाह का प्रयोजन और प्रकार एवं विवाह बंधन के साथ ग्रहस्थ के कर्तव्य कर्म को समझाते हुए पंच महायज्ञ की व्याख्या इसमें समाहित है। इसमें वर्ण व्यवस्था के बारे में बतलाया गया है।
5. पंचम सम्मुल्लास- इसमें वानप्रस्थ और संयास आश्रम का वर्णन है। संन्यासी की महत्ता और आवश्यक्ता पर प्रकाश डाला गया है। इसमें धर्म की व्याख्या है।
6. छठे सम्मुल्लास- इसमें राजधर्म का विस्तृत वर्णन है। राजा-राज्याधिकारी, प्रजा आदि के कर्तव्य कर्मों की व्याख्या समाहित की गई है।
7. सप्तम सम्मुल्लास- इसमें ईश्वर एवं वेद के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है। वेदों के बारें में जानने और ईश्वर को मानने का सुन्दर व्यवस्था इसमें है।
8. अष्टम सम्मुल्लास- इसमें जगत अर्थात सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति, प्रलय की चर्चा करते हुए भारत को ही आदि देश बतलाया गया है।
9. नवम् सम्मुल्लास- इसमें विद्या-अविद्या, मोक्ष आदि के बारे में बतलाया गया है। मुक्ति किसे कहते हैं और यह कैसे मिलती है इस पर व्यापक वर्णन है।
10. दशम् सम्मुल्लास- मनुष्य का अचार-विचार कैसा हो तथा आहार-अर्थात् भक्ष्याभक्ष्य के बारे में विस्तृत जानकारी है।
11. एकादश सम्मुल्लास- इसमें आर्यावर्तीय मतों पर व्यापक चर्चा है। नए-नए मतों के प्रार्दुभाव से एवं मूर्ति पूजा से कैसे हानि होती है तथा आर्य अर्थात् वैदिक धर्म से विकाश का मार्ग कैसे प्रशस्त होता है, उन सभी बिन्दुओं पर इसमें चर्चा की गई है।
12. द्वादश सम्मुल्लास- इसमें नास्तिक मत चारवाक-वैद्ध-जैन मतों की समीक्षा है।

www.thearyasamaj.org

13. त्रयोदस समुल्लास- इसमें ईसाई मत की समीक्षा है।

14. चतुर्दश सम्मुल्लास- इसमें इस्लाम मत की समीक्षा है।

अंत में ''स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश'' लिखकर यह उद्घोष कर दिया कि ''मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना या मत मतान्तर चलाने का लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।'' आगे उन्होंने कहाकि ''मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे।''

इतने अनूठे विचारों को लेकर के अमरग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश की रचना वेदोद्धारक, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कर डाली। यह ग्रंथ 1875 ई० में स्थापित ''आर्य समाज'' का प्राण हो गया। आर्य समाज ने इसके प्रचार के लिये काफी पुरूषार्थ किया। इसके नाम पर बड़े-बड़े आन्दोलन हुए। इस ग्रंथ ने ब्रितानिया हुकूमत की नीव हिला दी। इससे धर्म के ठेकेदारों का सिंहासन डगमगा गया। सत्य सिर चढ़ कर बोलने लगा। इसके बारे में आर्य समाज के दीवाने रक्त साक्षी पं० लेखराम लिखते हैं कि '' मैंने सत्यार्थ प्रकाश को 18 बार पढ़ा है, जितनी बार पढ़ता हूँ, हर बार कुछ नए रत्न प्राप्त होते हैं। सत्यार्थ प्रकाश एक हजार रू० का भी होता तो मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पति बेच कर खरीदता। इसके बारे में लाला लाजपत राय ने कहा ''जब कोई उलझण आती है तभी सत्यार्थ प्रकाश का पाठ करने से आसानी से सुलझा लेता हूँ। रामप्रसाद बिस्मिल ने कहा ''मैने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा। इससे मेरे जीवन का तख्ता पलट गया।'' वीर सावरकर ने कहा ''हिन्दू जाति की ठण्डी रंगो में उष्ण रक्त का संचार करने वाला सत्यार्थ प्रकाश अमर रहे यही मेरी कामना है। इसके विद्यमानता में कोई विद्यर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता।

आइये समय की मांग है, राष्ट्र की पुकार है भारत का अद्‌भुत संत महर्षि दयानन्द सरस्वती का अनुपम ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश को पढ़े और पढ़ाये। जन-जन में पहुँचायें।

संजय सत्यार्थी

प्रेषक :
सभा-मंत्री
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला
पटना-८०० ००४

मुद्रित सामग्री

सेवा में,
श्री/मेसर्स..................
मो..................
पो..................
जिला..................
(प्रेषिती के न मिलने पर यह अंक प्रेषक को ही लौटा दें।)

स्वत्वाधिकारी, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा,, श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 के लिए श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता (मंत्री) द्वारा जय उमा प्रिन्टर्स, पटना द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।